ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अप्रैल २०१३

वर्ष ४२ : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९०
विक्रम-संवत् : चैत्र/वैसाख २०७०
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११४

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आर्य

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक के लेख

- मिल कर होली मनाओ २
- वेदोपदेश ३
- चौंकिए मत.... ४
- "दयानन्द सन्देश" के स्वामित्व.... ४
- मेरे साहित्यिक जीवन का हीरक...... ५
- युवा पीढ़ी की शिक्षा..... १०
- संस्कृत भाषा १२
- हमने क्या खोजा.... १४
- स्वराज्य के प्रथम प्रस्तोता.... १९
- महर्षि दयानन्द की गायादि..... २२
- आर्यों! महर्षि दयानन्द.... २४
- प्राणायाम : एक विज्ञान २६

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

मिल कर होली मनाओ

(पं० नन्दलाल निर्भय भजनोपदेशक पत्रकार)

सकल विश्व के, सब नर-नारी, मिल कर होली पर्व मनाओ।
प्रेम-प्यार का रंग वर्षाओ, जाति-पाति का रोग मिटाओ।।

नव शंस्येष्टि यज्ञ होलिका, जिसे लोग होली कहते हैं।
महा पर्व है, फिर इस दिन क्यों मदिरा के दरिया बहते हैं।।
जुआ खेलते महा मूढ़जन, अज्ञानी वे दुःख सहते हैं।
चोरी-जारी, नीच कर्म कर, जीवन भर व्याकुल रहते हैं।।
नव संस्येष्टि महायज्ञ का, नादानों को महत्व बताओ।
प्रेम-प्यार का रंग वर्षाओ, जाति-पाति का रोग मिटाओ।।

फाल्गुन मास पूर्णमासी को, पर्व मनाया यह जाता है।
पिछला वर्ष बीत जाता है, अगला वर्ष निकट आता है।।
पक जाती है फसल रबी की, हर नर-नारी हर्षाता है।
आर्यों का इस महापर्व से, आदि काल से ही नाता है।।
यज्ञ-हवन, पुण्य-दान करो सब, स्वर्ग पुनः धरती पर लाओ।
प्रेम-प्यार का रंग वर्षाओ, जाति-पाति का रोग मिटाओ।।

अच्छी तरह समझ लो प्यारो! पर्व निराला है यह होली।
अब तक जो होली सो होली, सबसे बोलो मीठी बोली।।
मिलो परस्पर गले साथियो। बना-बना कर अपनी टोली।
मानव हो मानवता धारो, बात मान लो तुम अनमोली।।
परमार्थ के काम करो तुम, सर्व जगत् को सुखी बनाओ।
प्रेम-प्यार का रंग वर्षाओ, जाति-पाति का रोग मिटाओ।।

प्रातः उठ कर होली के दिन, संध्या करके हवन रचाओ।।
वृद्धजनों के चरण छुओ तुम, जगदीश्वर से ध्यान लगाओ।।
घी-सामग्री की आहूतियाँ, अग्निदेव को भेंट चढ़ाओ।
पर्यावरण सुधारो जग का, प्रदूषण को दूर भगाओ।।
पावन वैदिक धर्म निभाओ, सारे जग में आदर पाओ।
प्रेम-प्यार का रंग वर्षाओ, जाति-पाति का रोग मिटाओ।।

जुआ खेलना, मदिरा पीना, मानव का यह धर्म नहीं है।
उग्रवाद-आतंक मचाना, याद रखो! शुभ कर्म नहीं है।।
दुर्गुण त्यागो, सद्गुण धारो, बनो तपस्वी- परोपकारी।
राम, कृष्ण, दयानन्द बनो तुम, गुण गाएगी दुनिया सारी।।
नन्दलाल निर्भय अब जागो! जग में नाम अमर कर जाओ।
प्रेम-प्यार का रंग वर्षाओ, जाति-पाति का रोग मिटाओ।।

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। – महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **यज्ञः = दुष्टगुणानां दुष्टमनुष्याणां च** निषेधः देवता। प्राजापत्या-जगती छन्दः। निषादः स्वरः।।

सर्वैर्दुष्टगुणानां दुष्टमनुष्याणां च निषेधः कर्तव्य इत्युपदिश्यते।।

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुणों और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का निषेध करें, इस बात का उपदेश किया है।

ओ३म्– प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳरक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि। यजु० १-७।।

पदार्थः–(प्रत्युष्टम्) यत्प्रतीतं च तदुष्टं=दग्धं च तत् **(रक्षः)** रक्षःस्वभावो दुष्टो मनुष्यः **(प्रत्युष्टाः)** प्रत्यक्षतया उष्टा=दग्धव्यास्ते **(अरातयः)** अविद्यमाना रातिर्दानं येषु ते शत्रवः **(निष्टप्तं)** नितरां तप्तं=सन्तापयुक्तं च कार्य्यम् **(रक्षः)** स्वार्थी मनुष्यः **(निष्टपताः)** पूर्ववत् **(अरातयः)** कपटेन विद्यादान-ग्रहणरहिताः **(उरु)** बहुविधं सुखं प्राप्तुं प्रापयितुं वा। उर्विति बहुनामसु पठितम्।। निघं० ३।१।। **(अन्तरिक्षम्)** सुखसाधनार्थमवकाशम् **(अन्वेमि)** अनुगतं प्राप्नोमि।। अयं मंत्रः श० १।१।२। २-४ व्याख्यातः।।७।।

प्रमाणार्थ – (उरु) 'उरु' शब्द निघं० (३।१) में बहुनामों में पढ़ा गया है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । । २-४) में की गई है।। १ । ७ ।।

सपदार्थान्वयः – मया रक्षो रक्षःस्वभावो दुष्टो मनुष्यः **प्रत्युष्टं** यत् प्रतीतं च तदुष्टं=**दग्धं** च तद्, **अरातयो** अविद्यमाना रातिः दानं येषु ते शत्रवः **प्रत्युष्टाः** प्रत्यक्षतया उष्टाः=दग्धव्यास्ते, **रक्षः** स्वार्थी मनुष्यो **निष्टप्तं** नितरां तप्तं=सन्तापयुक्तं च कार्य्यम्, **अरातयः** कपटेन विद्यादानग्रहणरहिताः **निष्टप्ता** पूर्ववत्=नितरां तप्ताः=सन्तापयुक्ताश्च **पुरुषार्थेन सदैव कार्य्याः।**

एवं कृत्वान्तरिक्षं सुखसाधनाऽर्थमवकाशम् **उरु=बहुसंखं** बहुविधं सुखं प्राप्तुं प्रापयितुं वा च **अनु + एमि** अनुगतं करोमि।। १ । ७ ।।

भाषार्थ :– मुझे चाहिये, मैं **(रक्षः)** दुष्ट मनुष्य के राक्षस-स्वभाव को जानकर उसके दुष्ट-स्वभाव को **(प्रत्युष्टम्)** दग्ध करूँ और **(अरातयः)** राति अर्थात् दानादि शुभ-कर्मों से रहित जो शत्रु हैं, उनको भी **(प्रत्युष्टः)** प्रत्यक्षतया भस्म कर दूँ और **(रक्षः)** जो स्वार्थी मनुष्य है, उसे **(निष्टप्तम्)** सर्वथा सन्तापयुक्त करूँ तथा **(अरातयः)** छल से युक्त, विद्या के दान और ग्रहण से रहित जो दुष्ट हैं, उन्हें **(निष्टप्ताः)** अपने पुरुषार्थ से सदा सन्तापयुक्त करूँ।

ऐसा करके **(अन्तरिक्षम्)** सुख-सिद्धि के लिए उत्तम स्थान को **(उरु)** बहुत प्रकार के सुखों को प्राप्त करने-कराने के लिए **(अन्वेमि)** प्राप्त होऊँ।।१।७।।

भावार्थः– इदमीश्वर आज्ञापयति-सर्वै-मनुष्यैः स्वकीयं दुष्टस्वभावं त्यक्त्वाऽन्येषामपि विद्याधर्मोपदेशेन त्याजयित्वा दुटस्वभावान् मनुष्यांश्च निवार्य्य,

बहुविधं ज्ञानं सुखं च सम्पाद्य विद्याधर्मपुरुषार्थाऽन्विताः सुखिनः सर्वे प्राणिनः सदा सम्पादनीयाः ।।१।७।।

भावार्थ – ईश्वर यह आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट-स्वभाव छोड़कर तथा दूसरों का भी विद्या और धर्मोपदेश से छुड़ाकर, दुष्ट-स्वभाव वाले मनुष्यों को दूर हटाकर,

बहुत प्रकार का ज्ञान और सुख सिद्ध करके, सब मनुष्यों को विद्या, धर्म और पुरुषार्थ से युक्त कर उन्हें सदा सुखी रखें।। १ । ७ ।।

चौंकिए मत, गाय भी करती है भविष्यवाणी

(नई दिल्ली-इंटरनेट डेस्क)

हम सब जानते हैं कि गाय काफी समझदार प्राणी है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि गाय समझदार होने के साथ-साथ मौसम की सटीक भविष्वाणी भी कर सकती है। जी हाँ, वैज्ञानिकों ने दावा किया कि सर्दी, गरमी के अलावा गाय बारिश की भी सटीक भविष्यवाणी कर सकती है। अगर आप भी मौसम का हाल जानना चाहते हैं तो गाय को वॉच करना शुरु कर दीजिए। वैज्ञानिकों ने अपनी स्टडी के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि गाय अपने व्यवहार से मौसम की सटीक भविष्यवाणी कर सकती है। इस अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाया कि गर्मी के मौसम में गाय ज्यादा देर तक खड़ी रहती है। लेकिन अगर गाय थोड़ी-थोड़ी देर में लेटना आरंभ कर दे तो समझ लीजिए कि बारिश आने वाली है।

वैज्ञानिकों ने बताया कि अध्ययन के दौरान गाय के व्यवहार और मौसम के संबंध पर गौर किया गया तो पता चला कि गर्मी में गाय बैठने की अपेक्षा खड़ा रहना पसंद करती है। यदि सर्दी है तो गाय अधिक समय तक बैठना पसंद करती है। लेकिन यदि बारिश आने के आसार लग रहे हैं तो वो लेटना पसंद करती है।

ब्रिटेन के एनिमल फार्म के मालिक भी कहते हैं कि यदि घास के मैदान पर उन्हें बड़ी संख्या में गाय आराम से पसरी दिखाई दें तो वो बारिश आने का संकेत हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ एरिजोना के शोधकर्ताओं ने कहा कि चूंकि गर्मी में गाय काफी देर तक खड़ी रहती हैं और इस कारण उनकी काफी ऊर्जा खड़े रहने में इस्तेमाल होती है। इसी कारण दुग्ध उत्पादन में कमी आती है। अमेरिकी वैज्ञानिक भी काफी समय से गर्मियों में दुग्ध उत्पादन में होने वाली कमी का कारण जानना चाह रहे थे।

दरअसल गाय जब लेटती है तो उसका उद्देश्य धरती से ऊर्जा और गर्मी संरक्षित करना है। धरती से गर्मी संरक्षित करने का साफ संकेत है कि आने वाले में दिनों धरती ठंडी होने वाली है।

अच्छा है, इन लोगों को अब पता चल रहा है, तो अभी सही। अन्यथा तो हमारे ऋषि-मुनि सदियों से गाय की महिमा गाते आ रहे हैं। 'हमारी संस्कृति में तो गाय को माँ का स्थान दिया गया है, गोदुग्ध तो अमृत है ही गोमूत्र भी कई भयंकर असाध्य रोगों की अचूक दवा है।

(पंजाब केसरी से साभार)

"दयानन्द-सन्देश" के स्वामित्व आदि का विवरण

प्रकाशन का स्थान	:	२ एफ. कमलानगर, दिल्ली-७
प्रकाशन की अवधि	:	मासिक
प्रकाशक	:	धर्मपाल आर्य
क्या भारतीय है ?	:	भारतीय
पता	:	२एफ, कमलानगर, दिल्ली-७
सम्पादक	:	राजवीर शास्त्री
क्या भारतीय है	:	भारतीय
पता	:	भूपेन्द्रपुरी, मोदीनगर, गाजियाबाद।
मुद्रक	:	इरानियन आर्ट प्रिण्टर्स
क्या भारतीय है	:	भारतीय
पता	:	१५३४, गली कासिमजान, बल्लीमारान, दिल्ली-७
स्वामित्व	:	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,
	:	२ एफ, कमलानगर, दिल्ली-७

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखा विवरण मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सत्य है।

ह०
धर्मपाल आर्य
(प्रकाशक)

मेरे साहित्यिक जीवन का हीरक जयंती वर्ष-५

(राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन, अबोहर-१५२११६)

साहित्यिक उपलब्धियों के कुछ विशेष रोचक प्रसंग तो लेखमाला की अगली मणि में दूँगा। किसी प्रेमी पाठक ने सुझाया है कि इस बार अपने द्वारा किये गये अनुवाद कार्य का कुछ लेखा-जोखा दें। यह भी कोई साधारण कार्य नहीं। अगली पीढ़ियाँ आपकी सेवा से कुछ प्रेरणाएँ ले सकेंगी। मुझे भी यह सुझाव उपयोगी लगा।

आर्यसमाज ने अतीत में कई बड़े सुदक्ष विद्वान् अनुवादकों को जन्म दिया। मैं समय-समय पर ऐसे कई अनुवादकों/ सम्पादकों की सेवाओं पर लेख देता रहा हूँ। कुछ एक जिनसे मैंने ऐसे कार्यों की प्रेरणा प्राप्त की उनके यहाँ नाम नाम देता हूँ:- श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी, बाबू निहालसिंह जी, मुंशी प्रेमचन्दजी, लाला जीवनदास जी, महात्मा मुंशीराम जी, भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनि जी, मुनिवर दुर्गाप्रसाद जी, श्री पं० चमूपति जी, पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, श्री महाशय सुदर्शन जी, श्री पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक, श्रद्धेय लक्ष्मण जी आर्योपदेशक, श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, पूज्य स्वामी वेदानन्द जी, प्रिं० कृष्ण चन्द्र जी सिद्धान्त भूषण, श्री पं० घासीराम जी इत्यादि।

अब मैं अपने द्वारा किये गये अनुवाद कार्य का संक्षेप से वृत्तन्त देता हूँ। अतीत में अनुवाद कार्य करने वालों के कार्य का मूल्यांकन करें तो एक-एक आर्य साहित्यकार ने बहुत तपस्या की। सबका कार्य अपने-अपने स्थान पर विशेष महत्व रखता है। मैंने उन्हीं का अनुसरण करते हुए जिस कार्य के लिये प्रशंसा प्राप्त की, वह था रिफ़ार्मर उर्दू साप्ताहिक के ज्ञान-गंगा (वेदामृत) स्तम्भ के लिये श्री पं० शिवकुमार जी शास्त्री तथा आचार्य प्रियव्रत द्वारा कुछ वेदमन्त्रों की व्याख्या का उर्दू अनुवाद। तब अनुवाद के साथ मेरा नाम नहीं छपता था। मैं कुछ सीख ही रहा था। मुझे अनुभव प्राप्त हुआ। सम्पादक ने मेरी पीठ थपथपाई। यह भी कुछ कम प्राप्ति न थी।

जब अनुवाद का अच्छा अनुभव हो गया तो प्रकाशकों, प्रशंसकों तथा प्रेमियों ने कई बड़े-बड़े कार्य सुझाये व सौंपे। स्वयं स्फूर्ति से भी मैंने कई परियोजनायें (Projects) हाथ में लिये और सिरे भी चढ़ाये। मेरे अनुवाद कार्यों में जितनी विविधता मिलेगी, इतनी किसी अन्य आर्य साहित्यकार में सम्भवतः कम ही आप पायेंगे। विविधता विषयों व ग्रन्थों तथा लेखों की ही नहीं, लेखकों की भी है। जिन लेखकों, विद्वानों और विचारकों के लेखों, व्याख्यानों तथा पुस्तकों के अनुवाद मैं कर चुका हूँ, उनमें से कुछ चुने हुए विद्वानों के नाम अपनी स्मृति के आधार पर यहाँ देता हूँ:-

वीर शिरोमणि पं० लेखराम जी, स्वामी दर्शनानन्द जी, शूरता की शान स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, महात्मा हंसराज जी, भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनि जी, श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी, श्री पं० नरेन्द्र जी पत्रकार शिरोमणि श्री महाशय कृष्ण जी, चौधरी छोटूराम जी, श्री पं० चमूपति जी, श्री पं० मनसाराम जी, श्री पं० अयोध्याप्रसाद जी, पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, श्री पं० लोकनाथ जी, श्री पं० लक्ष्मणजी आर्योपदेशक, क्रान्तिकारी आनन्द किशोर जी, श्री अमर स्वामी जी, श्री स्वामी सत्यानन्द जी, श्री लाला जीवनदास जी, श्री स्वामी सत्यानन्द जी, श्री महाशय चिरंजीलाल जी प्रेम, श्री पं० शान्ति प्रकाश जी, देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी, श्री लाला लाजपतराय जी, हुतात्मा भाई श्यामलाल जी इत्यादि। सबके नाम तो इस समय मेरे ध्यान में नहीं हैं।

अनुवाद व सम्पादन कार्य करते हुए मैंने कुछ आर्य कवियों की रचनाओं के संग्रह भी देवनागरी लिपि में, कठिन उर्दू शब्दों के अर्थ देकर अपनी टिप्पणियों के साथ उन्हें प्रकाशित करवाया है। इन महान् कवियों की महानता व प्रतिभा के कारण मेरे कार्य के महत्व को

गुणीजन ही समझ सकते हैं। ऐसे कुछ कार्यों का उल्लेख यहाँ करना समाज हित में आवश्यक हो जाता है।

मैंने सद्धर्म प्रचारक के सन् १९०५ के एक अंक में प्रसिद्ध आर्य विद्वान् कवि बृजमोहन कैफ़ी के काव्य 'भारत दर्पण' की महात्मा मुंशीराम जी की समीक्षा पढ़ी। मैं कैफी जी के जीवन काल में ही आर्य पत्रों में उनकी कविताएँ चाव से पढ़ता रहा। मेरा उनका आयु का अन्तर तो बहुत था परन्तु मेरे लेख व कविताएँ भी उनकी रचनाओं के साथ उर्दू पत्रों में छपते रहे। कैफ़ी जी विद्वान् आर्य पुरुष थे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखित 'भारत दर्पण' की समीक्षा पढ़कर इस पुस्तक को पढ़ने की इच्छा जगी तो इसे खोजते-खोजते कई वर्ष निकल गये। कैफ़ी जी का स्थान उर्दू कवियों में बहुत ऊँचा था। न जाने एक मुसलमान के मन में आर्यसमाजी रंगत के इस काव्य के प्रकाशन का विचार कैसे उपजा। उसने इसका एक संस्करण निकाला। मेरे हाथ पुस्तक आ गई। इससे पता चला कि 'भारत भारती' लिखने की प्रेरणा मैथिलीशरण जी गुप्त को 'भारत दर्पण' से ही प्राप्त हुई। यह बात गुप्त जी ने भारत भारती की भूमिका में लिखी है।

अब भारत भारती के कई संस्करण देखे परन्तु वह भूमिका न मिली। कई हिन्दी प्राध्यापकों से पूछा परन्तु मोटे-मोटे वेतन पाने वाले इन लोगों के हृदय देश धर्म की आग से शून्य पाये। किसी ने इस कार्य में कोई रुचि न दिखाई। श्री पं० रामनिवास गुणग्राहक को यह यह कार्यभार सौंपा। कविवर पं० रामनिवास जी गुणग्राहक ने पहला संस्करण कहीं से खोज निकाला। मैं उक्त कथन उसमें पढ़कर झूम उठा। श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त वकील से यह बात की तो आपने इसके प्रकाशन की ठान ली। हमने इसे छपवा दिया। **भले ही आर्य जनता तथा जाति की दुहाई देने वाले हिन्दु संगठनों ने इस पुस्तक के प्रसार-प्रचार में कतई रुचि न ली परन्तु राम जन्म भूमि के अभियोग में हाई कोर्ट में प्रमाण देने के लिये वकीलों के काम तो आ गई।** इससे पाठक इस सेवा कार्य के महत्व का अनुमान लगा सकते हैं।

ऐसे ही स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने पं० चमूपति कृत 'गंग तरंग' काव्य पढ़ने की प्रेरणा दी तो पण्डित जी की अन्य-अन्य रचनाओं के पढ़ने की ललक लगी। दक्षिण भारत में पण्डित जी का काव्य संग्रह 'ज्वारभाटा'-भारत भेंट' पढ़ा। कुछ पद्य नोट करके कछ लिखा भी। इस पूरी पुस्तक को देवनागरी में करने की श्री जितेन्द्र कुमार जी को ही सूझी। अब इस पुस्तक की प्राप्ति के लिए मैंने दक्षिण भारत की तीन यात्रायें की। बहुत भागदौड़ करके वहीं से पुस्तक प्राप्त की- जहाँ कभी पहले देखी-पढ़ी थी। इसको भी देवनागरी में करके सम्पादन करके छपवा दिया। जलियाँवाला बाग के स्मारक में इसी से कुछ पंक्तियाँ लेकर दीवार पर अंकित हैं। वहाँ नीचे पं० चमूपति जी का नाम नहीं दिया गया। अब महाशय कृष्ण जैसा कोई नेता होता तो अपने प्रभाव से उसे दोबारा लिखवा/खुदवा देता। पंक्तियाँ भी तो अशुद्ध खोदी गई हैं। मैंने स्मारक ट्रस्ट को 'भारत भक्ति' के नाम से छपे पण्डित जी के संग्रह की कुछ प्रतियाँ भेज दी थीं।

आर्यसमाज के तीन मूर्धन्य यशस्वी कवियों महाशय जैमिनि जी सरशार, श्री मनोहरलाल जी शहीद तथा श्री शरर जी की चुनी हुई उर्दू कविताओं का एक संग्रह तीन वर्ष से मैंने प्रेस में दे रखा है। छपने में व्यर्थ की देरी हो रही है। इनमें शहीद जी की तथा 'शरर' जी की कुछ हिन्दी कविताएँ भी दी गई हैं। यहाँ यह बताना उपयोगी ही होगा कि शहीद जी तीन भाषाओं के कवि थे। धर्मवीर पं० लेखराम जी पर आपकी एक उत्तम लम्बी फारसी कविता भी मेरे संग्रह में है।

'मुसद्दस दयानन्द आज़म' पूज्य पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, की ऋषि दयानन्द पर एक प्रेरक व पठनीय लम्बी कविता है। कभी उर्दू में मुसद्दस छन्द को बहुत लोकप्रियता प्राप्त थी। आर्यसमाजी कवियों ने भी इस छन्द को लेकर कई सुन्दर पुस्तकें लिखीं। पं० लेखराम जी से आरम्भ हुई यह परम्परा उपाध्याय जी पर आकर समाप्त होती है। श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य की प्रबल प्रेरणा से मैंने उपाध्याय जी की उपरोक्त पुस्तक को देवनागरी में सम्पादित किया है। इसे पंजाब के आर्यसमाज गोनियाना

मण्डी ने छपवा दिया। इसका विस्तृत सम्पादकीय साहित्य प्रेमियों व समीक्षकों के लिये ठोक न पठनीय सामग्री है। ऋषि जीवन पर लिखा गया यह काव्य दार्शनिक रंगत में रचा गया है। इसमें भक्ति भाव, करुणा रस और वीर रस भी पाया जाता है। गुनगुनाने के लिये तथा व्याख्यानों में उद्धृत करने के लिये परमोपयोगी समझकर मैंने इस पर विशेष श्रम किया।

इनके अतिरिक्त भी श्री क्षितीश कुमार जी आदि विद्वानों की प्रेरणा से आर्य विद्वान् कवि मौलाना हैदर शरीफ जी की ऋषि पर एक लम्बी कविता का सम्पादन करके उसे हिन्दी पत्रों में छपवाया।

पं० लेखराम जी को मौत की धमकी देते हुए मिर्जा कादियनी ने एक लम्बी फारसी कविता लिखी थी। इस लम्बी कविता के कुछ पद्य स्वयं अल्लाह मियाँ ने रचे बताये जाते हैं। पं० लेखराम जी ने इस लम्बी इलहामी कविता के अल्लाह रचित पद्यों का उसी छन्द में केवल छह पंक्तियों में स्मरणीय तथा ओजस्वी साहित्यिक फारसी भाषा में उत्तर दिया था। प्रतिपक्षी के छन्द में ही उसी भाषा में उत्तर देने की परम्परा आर्यसमाज में पूज्य पं० लेखराम जी से ही चली। मैंने पण्डित जी की इस फारसी कविता का अतुकान्त हिन्दी कविता में अनुवाद करके इस रक्त साक्षी पं० लेखराम ग्रन्थ में छपवा दिया।

मैंने कविरत्न प्रकाश जी तथा यशस्वी आर्य कवि श्री डॉ० सत्यपाल जी 'बेदार' 'सरस' से विशेष विनती करके पण्डित जी की उक्त ऐतिहासिक कविता के भी हिन्दी में पद्यानुवाद करवा कर उसी ग्रन्थ में छपवा दिये। ये दोनों अनुवाद एक दूसरे से बढ़चढ़कर हैं। स्वर्गीय पं० लक्ष्मण जी की भी कुछ फारसी उर्दू रचनाओं को भी मैंने देवनागरी में प्रकाशित करवाया। मैंने किस-किस की किस-किस पुस्तक तथा लेख का हिन्दी अनुवाद किया, यह सब कुछ तो इस घड़ी मुझे स्मरण नहीं है परन्तु अनुवाद का जो सबसे बड़ा कार्य मैंने किया है, वह है श्रद्धेय लक्ष्मण जी द्वारा लिखित 'मुकम्मिल जीवन चरित्र' महर्षि दयानन्द'।

यह कार्य दो-ढाई मास में पूरा हो जायेगा। प्रथम भाग छप चुका है। यह गंगा ज्ञान सागर के आकार के छह सौ पृष्ठ का है। दूसरे भाग के भी छह सौ पृष्ठ कम्प्यूटरीकृत हो रहे हैं। शेष सामग्री कुछ विशेष कारणों से धीमी गति से कर रहा हूँ। इस भाग में ७००-७५० पृष्ठ होंगे। इसी ग्रन्थ के जीवनी भाग के अतिरिक्त एक तीसरा भाग ढाई सौ पृष्ठ का और भी देने का विचार बन रहा है।

इसमें अनुवाद के साथ कई परिशिष्ठ व अध्याय मैंने भी लिखे हैं। इनसे इस पठनीय ग्रन्थ की गरिमा और भी बढ़ गई है। ऋषि दयानन्द सम्बंधी उर्दू पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित हुए कई लेखों को भी अनूदित करके दोनों भागों में दिया है। अल्पज्ञ जीव के प्रत्येक कार्य में कुछ दोष तो रह ही जाते हैं। मैं भी इस सृष्टि नियम का अपवाद नहीं हूँ तथापि पूर्वजों के आशीर्वाद व प्रभुकृपा से मेरा यह पुरुषार्थ ऐतिहासिक माना जावेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

अपने द्वारा किये गये अनुवाद कार्यों की कुछ और चर्चा करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। जब मैंने एक विशेष सामाजिक उद्देश्य से महात्मा हँसराज ग्रन्थावलि का कार्य हाथ में लिया तो गोविन्दराम हासानन्द ने चार भागों में ग्रन्थावलि के प्रकाशन की घोषणा की। तब प्रकाशन व्यवसाय के पितामह साहित्य के पारखी श्री विश्वनाथ जी ने प्रकाशक से कहा, "महात्मा हंसराज ने लिखा ही क्या है, जो आप चार भाग देंगे?"

हमारे प्रकाशक संस्थान ने उत्तर दिया कि प्रथम भाग का तो अभी विमोचन हो रहा है। दूसरे का एक मास पश्चात् होगा। तीसरे की सामग्री हमें प्राप्त हो चुकी है और चौथा भाग तैयार करने में जिज्ञासु जी लगे हुए हैं। मैंने स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावलि के विमोचन के अवसर पर अपने भाषण में यह घटना सुनाते हुए कहा था कि मेरे परिश्रम का फ़ल सब चख रहे हैं। सारे डी.ए.वी. वाले पूरी शक्ति लगाकर महात्मा हंसराज के दो-चार नये लेख व भाषण नहीं खोज सके परन्तु मैं अब भी एक सौ पृष्ठ की सामग्री घूम-घूम कर खोज चुका हूँ। इसे मैं छपवाऊँगा नहीं। जीते जी नष्ट कर

दूँगा। मेरा नाम दिये बिना, मेरी अनुमति के बिना डी.ए.वी. के धर्मात्मा/महात्मा लोग मेरे द्वारा लिखित, अनूदित व सम्पादित सामग्री को छापते जा रहे हैं। इन परोपकारी साहित्य तस्करों की इस प्रीति के कारण मैंने ऐसा निश्चय किया है। (आदरणीय जिज्ञासु जी ने यह निश्चय कुछ सोच-समझ कर ही किया होगा, परन्तु इससे क्या भला होगा, यह समझ नहीं आ रहा।)

पूज्यपाद पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के साहित्य की सुरक्षा व संग्रह करने में मैं १९५० ई० के आसपास जुट गया था। तब मैं विद्यार्थी था और पूज्य उपाध्याय जी जीवित थे। मैंने इस क्षेत्र में इतना कार्य किया कि एक बार स्वामी सत्यप्रकाश जी ने मुझे कहा कि "राजेन्द्र! उपाध्याय जी ने अपने आरम्भिक काल में चार ट्रैक्ट अंग्रेजी में लिखे व छपवाये थे। वे नहीं मिल रहे। मैं उन्हें खोजने में लगा हूँ। आप भी खोजें।" मैंने कहा, "स्वामी जी। दो तो खोज चुका हूँ और दो की खोज में लगा हूँ। वे दो दिखा दिये।

यह भी एक विचित्र संयोग समझिये कि श्री स्वामी जी भी वही दो (जो मेरे पास थे) खोज सके। शेष दो न तो उनको कहीं से मिले और न मुझे मिले। हिम्मत तो हारी नहीं। सम्भव है कभी मिल जावें।

मैंने उपाध्याय जी के कुछ अंग्रेजी ट्रैक्टों व लेखों का यात्रा करते हुए गाड़ी में भी अनुवाद कर डाला। उनकी अनूठी पुस्तक 'बारी ताला' का आस्तिकता नाम से अनुवाद करके गंगा- ज्ञान सागर के दूसरे भाग में छपवा दिया। इसके अतिरिक्त उनके बीसियों लेखों, ट्रैक्टों तथा व्याख्यानों का उर्दू तथा अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद करके गंगा ज्ञान सागर तथा 'गंगा-ज्ञानधारा' ग्रन्थमाला के अन्तर्गत छपवा दिया है। अभी मेरा यह यज्ञ अखण्ड/प्रचण्ड चल रहा है। स्वाध्याय प्रेमियों ने इसका जो स्वागत किया है, वह अपने आप में एक उदाहरण है। किसी भी आर्य विद्वान् साहित्यकार के निधन के पश्चात् इतना बड़ा ग्रन्थ संग्रह व ग्रन्थमाला नहीं छपी। स्वामी दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह सबसे बड़ा माना गया। 'गंगा-ज्ञान सागर' का प्रथम भाग ही मैंने उससे बड़ा तैयार करके छपवा दिया।

इस समय कई प्रादेशिक भाषाओं में यह ग्रन्थमाला छपती जा रही है। नये-नये अनुवादक व प्रकाशक इसके अनुवाद करने की अनुमति माँगते रहते हैं। मुझे गौरव तथा सन्तोष है कि दुबला पतला तन पाकर, एक छोटे से ग्राम में, एक अल्प शिक्षित पिता से वैदिक धर्म के विचार संस्कार लेकर मैं ऐसा महत्वपूर्ण कार्य कर सका। (आप दिखने में भले ही दुबले-पतले लगते हैं, परन्तु आपकी गतिविधियाँ किसी बलिष्ठ नौजवान से कम नहीं)।

क्या इसे ईश्वर की कृपावृष्टि न समझूँ कि मेरे जीवन काल में ही मेरी कई छोटी-बड़ी कृतियों का कई भाषाओं में अनुवाद होता चला जा रहा है। इसका श्रेय पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज, उन्हीं के क्षेत्र में जन्में दो आर्यवीरों श्री अनिल आर्य, श्री महेन्द्र सिंह आर्य तथा बन्धुवर सत्येन्द्र सिंह जी को भी देना मेरा कर्त्तव्य बनता है। अब मेरे नाती भी बड़े हो रहे हैं। उच्च शिक्षित तथा धार्मिक बनकर समाज सेवा के लिये शीघ्र कार्यक्षेत्र में कूदेंगे। मुझे उन्हें कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं। वे स्वयं स्फूर्ति से ऋषि मिशन के लिये मेरे साहित्य का प्रसार करेंगे।

मैंने ऊपर 'गंग तरंग' पुस्तिका की चर्चा की है। यह पं० चमूपति जी का काव्य है। अत्यन्त विचारोत्तेजक व रोचक है। ओजस्वी और साहित्यिक भाषा में रची गयी उर्दू की पहली काव्य पुस्तिका थी, जिसको मैंने देवनागरी का रूप देकर पं० चमूपति जी की ज्ञानवर्द्धक भूमिका के अनुवाद सहित छपवाया।

मैंने १९६० में पं० शान्तिप्रकाश जी के एक उर्दू ट्रैक्ट (पंजाब के विभाजन विषय पर) का भी हिन्दी अनुवाद किया था। उसके छापने में प्रेस ने बहुत विलम्ब कर दिया था फिर पण्डित जी ने इसके प्रकाशन का विचार ही छोड़ दिया था। तब पण्डित जी को मेरे द्वारा किया गया वह अनुवाद बहुत भाया था।

मेरे द्वारा अनूदित पुस्तकों में कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों की ओर विद्वानों का ध्यान तो गया परन्तु एक से

अधिक बार छपने पर भी आर्य जनता ने उनके प्रचार-प्रसार में जी जान से उत्साह नहीं दिखाया। मेरे ऐसे कार्यों में से एक है—मुन्शी कन्हैयालाल जी अलखधारी लिखित महर्षि का सर्वप्रथम जीवनवृत्त। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी इसकी बहुत चर्चा किया करते थे इस कारण मैं इसकी खोज में लग गया। जब मिल गई तो इसका अनुवाद व सम्पादन भी पूरी श्रद्धा व उत्साह से किया। यह आश्चर्य का विषय है कि एक नास्तिक (मुंशी जी ने स्वयं को नास्तिक ही लिखा है। वह नवीन वेदान्ती नहीं थे) देशभक्त, जातिभक्त, निडर, सुधारक ने सबसे पहले ऋषि जीवन पर लेखनी चलाई। इस पुस्तिका की खोज, अनुवाद तथा तीन-चार बार छप जाना बड़ा आनन्ददायक कार्य है। इसी पुस्तिका ने नररत्न पं० लेखराम आर्य जाति को दिया, सो इस लघु पुस्तिका का बहुत महत्त्व है।

महर्षि दयानन्द के प्रेरक प्रसंगः- श्रद्धेय लक्ष्मण जी लिखित कोई ३०० पृष्ठों की उर्दू पुस्तक 'ऋषि जीवन कथा' हमारे पिताजी ने अपने चारों पुत्रों को पढ़ाई। ग्राम के अन्य संस्कारी आर्य युवकों नें भी हमारे ग्राम में पहले यही ऋषि जीवन पढ़ा था। मैंने १३-१४ वर्ष की आयु में इसे अत्यन्त भक्तिभाव व सुरुचि से तब पढ़ा था। लक्ष्मण जी भी उपाध्याय जी के सदृश लिखने की मशीन थे। दोनों के लाखों पृष्ठ छपे। उपाध्याय जी तथा लक्ष्मण जी के साहित्य पर मैंने सर्वाधिक शक्ति लगाई है। 'ऋषि जीवन कथा' का 'महर्षि दयानन्द के प्रेरक प्रसंग' नाम से सन् २०१० में अनुवाद कर दिया। गोविन्दराम हासानन्द ने इसे प्रकाशित कर दिया। गुणी विद्वान् अनुवाद के साथ सम्पादन को भी देखें व परखें।

निष्कलंक दयानन्द :- यह भी लक्ष्मण जी की मौलिक, खोजपूर्ण तथा अनूठी पुस्तक है। मैंने दसवीं की परीक्षा देकर इसे पढ़ा था। यह महर्षि के निर्मल जीवन पर वार करने वाले विरोधी मतों की पाँच घृणित पोथियों का उत्तर है। महात्मा नारायण स्वामी जी ने इसकी भूमिका लिखी है। विरोधियों को उत्तर देने के लिये बुद्धि व ज्ञान के साथ उत्तर देने की कला भी चाहिये। लक्ष्मण जी के पास बुद्धि भी थी, ज्ञान भी था और उत्तर देने की कला के आप मर्मज्ञ थे। हमने अनुवाद छपवा भी दिया परन्तु बातें बनाने वाली सभा, संस्थाओं तथा नये पुराने महत्त्वाकांक्षी लीडरों ने इसके पठन-पाठन में कतई रुचि न ली।

महर्षि का एक अलभ्य शास्त्रार्थः- सन् १८८१ में विश्व इतिहास में एक विचित्र घटना घटी। संसार में प्रथम बार ही किसी विचारक/सुधारक के विरोध में उसके समस्त देश के शीर्षस्थ विद्वानों व जातीय बन्धुओं ने एक सर्वसम्मत फ़त्वा (व्यवस्था) उसका पक्ष सुने बिना ही दे दी। यह विचारक थे महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज। महर्षि ने इसको तनिक भी महत्व न दिया। महर्षि से पूछ-पूछ कर आर्यों ने इसका अत्यन्त विद्वतापूर्ण उत्तर तभी छपवा दिया। यह एक लिखित शास्त्रार्थ हो गया। यह उर्दू में छपा था। इसका नाम था 'रसाला एक आर्य'। इसके लेखक ला० साईंदास बताये गये परन्तु पुस्तक पर उनके नाम के साथ 'मुअल्लफ़' (Editor-सम्पादक) शब्द छपा मिलता है। वर्षों इसकी खोज में लगाये। पूज्य मीमांसक जी ने देह-त्याग से पुर्व मुझे यह पुस्तक दिखाने को कहा। जब कहा कि मिलते ही पहले आप ही को दिखाऊँगा। यह सुनकर वह निराश हुए और कहा आर्यों को यह बता दो कि यह उत्तर साईंदास जी का नहीं हो सकता। यह ऋषि जी से पूछकर उत्तर दिया गया। पण्डित जी मृत्यु से पूर्व यह लिखते गये।

मैंने यह पुस्तक खोज निकाली। अनुवाद व सम्पादन भी कर दिया। इसका दूसरा संस्करण परोपकारिणी सभा ने प्रकाशित करवा दिया। इसका अंग्रेजी अनुवाद मारिशस के पं० सत्यप्रकाश जी ने कर दिया है। ला० साईंदास प्रबंधक थे। वह न लेखक थे, न गवेषक थे और न ही वक्ता थे। आपने १३ वर्ष के सामाजिक जीवन में एक भी लेख नहीं लिखा। प्रतिपक्षी मूर्धन्य पण्डितों का उत्तर देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। मेरे इस परिश्रम को अब आर्यों ने समझा है। यह प्रभु की कृपा है।

❑❑

युवा पीढ़ी की शिक्षा और उसका भविष्य

(धर्मपाल आर्य, २ एफ, कमला नगर, दिल्ली)

राष्ट्र यदि शरीर है, तो युवा-पीढ़ी उसकी धड़कन है। राष्ट्र यदि भवन है, तो युवा-पीढ़ी उसकी नींव है। राष्ट्र यदि आकाश है, तो युवा-पीढ़ी नक्षत्र है। राष्ट्र रूपी वृक्ष की युवा-पीढ़ी जड़ है। राष्ट्र और युवा के बीच चोली दामन का सम्बन्ध है। युवा-पीढ़ी ही राष्ट्रीय गौरव-गाथा की सूत्रधार होती है। युवा-पीढ़ी राष्ट्र की अमिट पहचान होती है। युवा-पीढ़ी राष्ट्र का बल होती है। युवा-पीढ़ी ही राष्ट्रोत्थान की सीढ़ी होती है। युवा-पीढ़ी ही राष्ट्र का उज्जवल भविष्य होती है। युवा-पीढ़ी राष्ट्र का प्राण होती है। युवा-पीढ़ी ही राष्ट्र का अमर इतिहास होती है तथा युवा-पीढ़ी ही राष्ट्र की तकदीर होती है। इस प्रकार और भी असंख्यों विशेषण हो सकते हैं, जो युवा पीढ़ी की विशेषता को अभिव्यक्त करते हैं। अनेकों बार नहीं अपितु असंख्यों बार राजनीतिक, सामाजिक व ऐतिहासिक परिवर्तनों में युवा पीढ़ी की निर्णायक भूमिका रही है। कोई भी आंन्दोलन हो कोई भी क्रान्ति रही हो उसकी सफलता के पीछे युवा-पीढ़ी की निर्णायक भूमिका रही है। आज हमारा देश जिन चुनौतियों से जूझ रहा है, उनका सामना करने की क्षमता भी युवा-पीढ़ी में ही है। अतः मुझे यह लिखने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि युवा-पीढ़ी ही देशवासियों के लिए निराशा के घोर तिमिर में आशा की एक सुखद किरण है। ऊपर मैंने युवा-पीढ़ी के जितने विशेषण दिए हैं, उतने ही प्रश्न भी उस (युवा पीढ़ी) के विषय में उठ सकते हैं या उठाये जा सकते हैं, जैसे कि राष्ट्र-रूपी शरीर की धड़कन, राष्ट्र रूपी भवन की नींव, राष्ट्र रूपी आकाश का नक्षत्र, राष्ट्र-रूपी वृक्ष की जड़, राष्ट्र-युवा पीढ़ी के मध्य चोली-दामन का सम्बन्ध, राष्ट्र का बल, राष्ट्र का तेज, राष्ट्र की गौरव गाथा, राष्ट्रत्थान की सीढ़ी, जिस युवा पीढ़ी को बताया जा रहा है, आखिर वो कौन सी व कैसी युवा पीढ़ी है, जिसका राष्ट्र के साथ शरीर-आत्मा का सम्बन्ध है। क्या वो युवा-पीढ़ी जो आज ताशों-पाशों (जुआ) के खेल में मस्त हैं? क्या वो युवा-पीढ़ी जो सुरा-सुन्दरी के चंगुल में फंसी हुई है? क्या वो युवा-पीढ़ी, जो अपनी संस्कृति-सभ्यता के विरुद्ध बगावत के रास्ते पर चल रही है? क्या वो युवा-पीढ़ी, जो विदेशी सभ्यता के पायदान पर खड़े होकर जीवन-मूल्यों का आकलन करती है? क्या वो युवा-पीढ़ी, जो तथाकथित आधुनिकता व ज्ञान विज्ञान का नकाब ओढ़कर भारतीय जीवन-मूल्यों की न केवल अवहेलना करती है अपितु अभिमानपूर्वक उनका अनादर भी करती है। क्या वो युवा-पीढ़ी, जिसने सांस्कृतिक-थातों को ताक पर रख दिया है? जी नहीं, मैं ऐसी युवा-पीढ़ी की बात कर रहा हूँ, जिसमें आस्तिकता है, मैं उस युवा-पीढ़ी की बात कर रहा हूँ, जो जीवन जीने के प्रयास के साथ-साथ जीवन को जानने का प्रयास करती है। मैं उस युवा-पीढ़ी की बात कर रहा हूँ, जिसमें सांस्कृतिक-मूल्यों के प्रति न केवल आदर भाव है अपितु समर्पण भाव भी है। मैं उस युवा-पीढ़ी की बात कर रहा हूँ, जिसमें जीवन के हर पहलू में संयम व सदाचार है। मैं उस युवा-पीढ़ी की बात कर रहा हूँ, जो (युवा-पीढ़ी) ब्रह्मचारी है अर्थात् जिसके जीवन में ब्रह्मचर्य है। लेकिन ब्रह्मचर्य की, संयम की तथा सदाचार की आज की युवा-पीढ़ी को शिक्षा कौन प्रदान करे? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास (अध्ययनाध्यापन विधि) में लिखते हैं कि ''सन्तानों को उत्तम विद्या,

शिक्षा, गुण, क़र्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता-पिता आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। जो अध्यापक पुरुष व स्त्री दुष्टाचारी हैं, उनसे शिक्षा न दिलावें किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने के योग्य हैं। ब्रह्मचर्य, सदाचार, संयम, शिष्टाचार आदि की शिक्षा धार्मिक माता-पिता और संयमी व सदाचारी शिक्षकों द्वारा ही दी जा सकती है। राजा का भी यह कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में अन्य विद्याओं की शिक्षा के साथ-साथ अपने नागरिकों को नैतिकता, सदाचार और संयम की शिक्षा देने का समुचित प्रयास व प्रबन्ध करे। आज देखने में यह आता है कि माता-पिता बच्चों को अच्छे संस्कार नहीं दे पा रहे हैं और शासन भी अपने नागरिकों को अच्छे संस्कारों की शिक्षा के प्रति ज्यादा गम्भीर नहीं है। प्रतिदिनि आपराधिक घटनाएँ जिस प्रकार बढ़ रही हैं इनसे माता पिता को, समाज को, शासन को, समाज के हितचिन्तकों को कुछ तो सबक सीखना चाहिए। हम सदाचार की शिक्षा की, सच्चारित्र्य की शिक्षा को, नैतिकता की शिक्षा को कब तक नजरन्दाज करते रहेंगे? संस्कृत साहित्य में सदाचार का महत्व बताते हुए लिखा है कि-

आचारत् लभते ह्यायुः आचारात् लभते श्रियम्।
आचारात् लभते कीर्तिः पुरुषः प्रेत्य चेह च।

अर्थात् सदाचार से पुरुष आयु लक्ष्मी, कीर्ति को प्राप्त करता है। इस संसार में और संसार से जाने के बाद भी। आधुनिक शिक्षा के मकड़जाल में हम इतने उलझ गये हैं कि शिक्षा का हमें केवल एक ही पहलू दिखाई देता है कि हमारी सन्तान, हमारे छात्र पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़े हो जाएँ, अपनी रोजी-रोटी कमाकर आत्मनिर्भर बन जाएँ। आधुनिक शिक्षा के विषय में राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में ठीक ही लिखा है कि

दासत्व के परिणाम वाली आज है शिक्षा यहाँ।
हैं मुख्य दो ही जीविकाएँ भृत्यता भिक्षा यहाँ।।
या तो कहीं बनकर मुहर्रिर पेट का पालन करो।
या मिल सके तो भीख माँगो,अन्यथा भूखो मरो।

यह कटु सत्य है कि आज की शिक्षा में दासता है, आज की शिक्षा में मानवीय मूल्यों का अभाव है। आज की शिक्षा का उद्देश्य रोटी, कपड़ा और मकान तक सीमित है, आज की शिक्षा में चरित्र-निर्माण का कोई प्रयास नहीं है, आज की शिक्षा में शुभ-संस्कारों का कोई अस्तित्व नहीं है। जिस शिक्षा में दासता हो, जिस शिक्षा में मानवीय मूल्यों का अभाव हो, जिस शिक्षा का उद्देश्य मात्र रोटी, कपड़ा और मकान हासिल करना ही हो, जिस शिक्षा में चरित्र निर्माण का प्रयास न हो, जिस शिक्षा में शुभ-संस्कारों का अस्तित्व न हो, ऐसी शिक्षा में पढ़ने और पलने वाली युवा पीढ़ी के भविष्य का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। आज तथाकथित उच्च शिक्षा के जोर-जोर से ढोल पीटे जा रहे हैं। लेकिन वो शिक्षा युवा पीढ़ी के भविष्य निर्माण में, उसके चरित्र को संवारने में, नैतिक व मानवीय मूल्यों को विकसित करने में न केवल विफल साबित हुई है अपितु अनुपयोगी भी सिद्ध हुई है। मुझे यह लिखने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि यदि इस विषय पर हमने गम्भीरता से विचार नहीं किया और पाश्चात्य सभ्यता से सराबोर शिक्षा-पद्धति को यूँ ही ढोते रहे, तो वह दिन दूर नहीं जब देश में युवा पीढ़ी व्यसनों की दलदल में और अधिक धंस जायेगी तथा उज्जवल भविष्य की संभावनाएँ दूर-दूर तक नजर नहीं आयेंगी और उस स्थिति में युवा पीढ़ी के निर्माण में और समाज, राष्ट्र, परिवार, माता-पिता और गुरुओं के सामने, चुनौतियाँ और भी अधिक भयावह हो जायेंगी।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते अर्थात् मनुष्य अविद्या (सांसारिक विद्या) से मृत्यु (सांसारिक समस्या) से पार होता है जबकि विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है। अतः युवा पीढ़ी को पूर्ण शिक्षा प्रदान की जाये।

संस्कृत भाषा

(उत्तरा नेरुर्कर, बंग्लौर, मो : ९५४५०५८३१०)

वैसे तो हर भारतीय संस्कृत को आदर की दृष्टि से देखता है और जानता है कि यह भारत की अधिकतर भाषाओं की भी जननी है। इसकी वैज्ञानिकता के विषय में अब किसी को सन्देह नहीं है। यहाँ तक कि बच्चे इसे स्कूलों में इसलिए चुनते हैं कि गणित की तरह, इसमें शत-प्रतिशत अंक मिल सकते हैं। फिर भी, इस भाषा की वास्तविक महानता से सम्भवतः बहुत जन परिचित न हों। इस लेख में मैंने उसको उभारने का प्रयत्न किया है।

प्रथम, हमें यह समझना चाहिए कि संस्कृत को वैज्ञानिकी भाषा क्यों माना जाता है। संस्कृत एक ऐसी अनोखी भाषा है, जिसमें शब्द गिने-चुने मूल रूपों से बनते हैं। इन मूल रूपों में उपसर्ग और प्रत्यय जोड़-जोड़कर शब्द ऐसे निकले चले आते हैं जैसे कि चरखे से सूत! उदाहरण के लिए, क्रिया के मूल (धातु) 'पठ्' से प्रत्ययों के एक समूह (तिङ्) को जोड़ने से सारे क्रिया भेद (लकार) उत्पन्न हो जाते हैं - पठति, पठतः, ... (वर्तमान); अपठत्, अपठताम्, ... (भूत); पठिष्यति, पठिष्यतः, ... (भविष्यत्), आदि। फिर, एक अन्य समूह (कृत्) को जोड़ने से उस क्रिया से सम्बद्ध संज्ञाएँ निकलने लगती हैं - पाठः (जो पढ़ा जाए), पाठकः (जो पढ़े), पठितः (जो पढ़ा गया हो), पठितवान (जिसने पढ़ लिया हो), आदि आदि। लिंग प्रत्ययों को जोड़कर इन संज्ञाओं को स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में भी प्राप्त किया जा सकता है। इन नामों (संज्ञाओं) से (तद्धित) प्रत्यय जोड़कर उनसे विशेष अर्थों में नाम-पद निकाले जा सकते हैं, जैसे - 'द्रुपद' की बेटी 'द्रौपदी' (सन्तानार्थक प्रत्यय), 'काष्ठ' का बना - 'काष्ठमय', आदि, आदि। बहुत ही विशेष उणादि प्रत्यय लगाकर, संस्कृत की अधिकतर आरम्भिक संज्ञाए बनती हैं, जैसे - वाति इति 'वायुः' (बहती है इसलिए 'वायु'), चक्षते रूपमनुभवति इति 'चक्षुः' (रूप का अनुभव करता है इसलिए 'चक्षु')। इन संज्ञा पदों में प्रत्यय लगाकर, इन्हें पुनः धातु बना सकते हैं, जैसे - 'कृष्णति (कृष्ण की तरह आचरण करता है), स्वीकरोति (अपना बनाता है)। इन नई धातुओं से पुनः ऊपर कहे सभी प्रत्यय फिर लग जायेंगे।

दूसरी ओर, क्रिया-मूल में उपसर्ग जोड़ने से अन्य क्रिया-मूल उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे - 'भू(होना)' धातु से 'अनुभू'= अनुभव करना, 'पराभू' = पराजित होना, आदि। इस प्रकार अनेक नए अर्थ भी उत्पन्न हो जाते हैं। फिर, कुछ विशिष्ट प्रत्यय लगकर, और भी अर्थ निकल आते हैं, जैसे - 'ज्ञा जानना' से जिज्ञासति (जानने की इच्छा करती है), जिज्ञासुः (जानने की इच्छा वाला), पाठयति (पढ़ाता है), चंचल्यते (बार-बार चलती है; इसी से चंचल बना है)। निघन्टु-निरूक्त में और भी शब्दों - मुख्यरूप से वैदिक शब्दों - को प्रकृति प्रत्यय में बाँटकर समझाया गया है। उपर्युक्त सारे शब्दों को समास से जोड़कर और भी असंख्य शब्द बन जाते हैं।

इन प्रत्ययों और उपसर्गों के लगने के क्रम को पाणिनि ने सबसे सूक्ष्म रूप में समझा। उन्होंने अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणदिकोष ग्रन्थों की रचना कर समस्त विश्व पर असीम उपकार किया। २००० धातुओं, २२ उपसर्गों, १५०० प्रत्ययों और ४००० व्याकरण के सूत्रों में इस अथाह शब्द-समूह को अंजलि में भर दिया। वस्तुतः, पाणिनि की कृतिओं से ही संस्कृत की वैज्ञानिकता का बोध होता है - कैसे ईंटों से बने भवन के समान, शब्दरूपी ईंटें जोड़ते रहने से संस्कृत का भवन बढ़ता चला जाता है - बिना किसी अन्त के।

वैसे, तो अन्य संस्कृत-जनित विदेशी भाषाओं में भी

उपसर्ग और प्रत्यय दीखते हैं, परन्तु उनके नियम संस्कृत की तरह व्यापक नहीं हैं। इसलिए उनका अष्टाध्यायी जैसा सूक्ष्म संग्रह करना असम्भव है। हाँ, शब्द-सम्पदा, संस्कृत की तुलना में, बहुत छोटी होने के कारण, सारे शब्दों की सूची बनाना, दुष्कर कार्य होते हुए भी असम्भव नहीं है। अन्य संस्कृत-अपभ्रंश भारतीय भाषाएँ तो पूर्णतया संस्कृत पर इस सम्बन्ध के लिए निर्भर हैं।

इस वर्णन से स्पष्ट होगा कि संस्कृत में शब्द अर्थों के आधार पर होते हैं। जब कभी हमें किसी नई वस्तु के लिए शब्द बनाना होता है, तो यह प्रक्रिया संस्कृत में बहुत सरल होती है। यूरोप की प्राचीन भाषाएँ, जो संस्कृत से निकली हैं, जैसे ग्रीक व लैटिन, में भी धातुएँ दृष्टिगोचर होती हैं। पाश्चात्य देशों में इन धातुओं से शब्द निकलने की प्रवृत्ति देखी जाती थी। इसलिए जब कम्प्यूटर का आविष्कार हुआ तो, उसका गणित में विशेष प्रयोग होने के कारण, लैटिन के com('सम्' उपसर्ग का अपभ्रंश) = साथ + Putare धातु = गिनना से बनाया गया। संस्कृत में इसी अर्थ को लेकर उसका नामकरण किया गया - संगणकम्। पिछली सदी के अन्तिम भाग में इस प्रथा का ह्रास होने लगा, और शब्द निरर्थक होने लगे, जैसे - Fuzzy = अस्पष्ट या जिसका वर्णन न किया जा सके, Network = सम्बन्धों का जाल, आदि, आदि। आजकल तो मुझे नहीं लगता अंग्रेजी का कोई भी शब्द ग्रीक या लैटिन से निष्पन्न किया जाता है। बल्कि संस्कृत में भी इन निरर्थक शब्दों ने प्रवेश करना आरम्भ कर दिया है, जैसे - ट्रेन के लिए 'रेलयानम्'।

इस भाषा के ह्रास से हमें इस बात का बोध होना चाहिए कि हर वस्तु बुरे से अच्छे में विकसित नहीं होती, जैसा कि डार्विन के विचारों से प्रभावित होकर प्रायः आज सारा संसार मानता है। बहुत-सी वस्तुएँ नष्ट-प्राय हो जाती हैं। यह एक विचित्र बात है। अनुमान तो यही लगता है कि मानव ने धीरे-धीरे भाषा का विकास किया होगा। परन्तु उस प्रक्रिया से भाषा वैसे ही उत्पन्न होती है, जैसी आजकल चीनी, जापानी, आदि भाषाएँ हैं - सम्पूर्ण अक्षरों से रहित, सम्पूर्ण अर्थों से रहित, संज्ञा-क्रिया, प्रत्यय-उपसर्ग के भेद से रहित, और जहाँ एक अक्षर का अर्थ कभी-कभी पूरा वाक्य होता है, जैसे - 'मनुष्य पानी पीता है'। फिर, बिजली की तरह, यह बात मस्तिष्क में कौंधती है कि संस्कृत की जो यह पूर्णता है, यह मानवीय नहीं हो सकती, यह, प्रकृति की हर कृति के समान, अन्दर से बाहर तक सुन्दर और अत्यन्त असमान बुद्धि से बनी हुई है। जो पुराने ऋषि कह गये कि यह दैवी-भाषा है, पमात्मा की देन है, जो वेदों में अनेकों बार कहा गया है कि वेद परमात्मा से प्रस्फुटित हुए और उनसे मनुष्य ने संस्कृत सीखी, इसकी सत्यता समझ में आने लगती है। हमारे हाथों में तो इसका अपभ्रंश ही हुआ है, और निरन्तर होता जा रहा है।

जब हमें यह प्रतीत हो जाए कि इसे परमात्मा ने दिया, तो यह तो स्पष्ट हो ही गया कि इसका एक भी शब्द निरर्थक नहीं हो सकता, परन्तु एक निष्कर्ष और निकलने लगता है - हर स्वर, हर अक्षर से जो शब्द बनता है, वह भी सम्भवतः, निरर्थक न हो। यह और भी अचम्भे वाला विचार है। क्या यह सम्भव है कि हर वाचक शब्द का - उसके अंगों के क्रम का - अपनी वाच्य वस्तु से अभिन्न सम्बन्ध हो? पण्डित भगवद्दत ने अपने निरुक्त-भाष्य में इसको वास्तविकता माना है। शब्दों (अर्थात् वैदिक संस्कृत का वाच्य-वाचक सम्बन्ध) की नित्यता की घोषणा भी सारे प्राचीन ग्रन्थ करते हैं संस्कृत के गहन अध्येता को यह सत्य साक्षात् दिखने लगता है।

स्वामी दयानन्द ने सदा ही आर्यों के लिए संस्कृत का बोध अनिवार्य बताया है। पहले तो वे अपने प्रवचन संस्कृत में ही देते थे। फिर साधारण जनों के उपकार के लिए उन्होंने हिन्दी सीखी। उल्टी दिशा में सोचें तो, परमात्मा के निकट जाने के लिए संस्कृत को जानना अनिवार्य है। परमात्मा की भाषा को जाने बिना, आप ब्रह्मानन्द का अनुभव कैसे कर सकते हैं?

हमने क्या खोजा- भारत या इण्डिया?

(राजेशार्य आट्टा, ११६६, कच्चा किला, साढौरा, यमुनानगर-१३३२०४)

प्रिय पाठकवृन्द! हरियाणा विद्यालय शिक्षाबोर्ड में पिछले कई वर्षों से हिन्दी की पूरक पाठ्यपुस्तक के रूप में पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा लिखित पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' का अनुवादित व संक्षिप्त रूप 'भारत की खोज' नाम से पढ़ाया जा रहा है।। निस्सन्देह लेखक के भारत प्रेम ने उन्हें भारत के विषय में लिखने के लिए प्रेरित किया, पर 'भारत की खोज' का गम्भीरता से अध्ययन करने पर ऐसा लगता है कि लेखक ने अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण के कारण भारत (लेखक के इण्डिया, क्योंकि अंग्रेजी में भी Bharat लिखा जा सकता था) के पर्वतों, नदियों, प्राचीन भवनों (मुख्यतः मकबरे किले आदि) से लगाव के कारण यहाँ के महान् व्यक्तियों की उपेक्षा कर दी, जिनकी संस्कृति और आचरण में आर्यावर्त या भारतवर्ष बसता था। वैसे भी लेखक अंग्रेजों और मुसलमानों द्वारा दिये गये नामों, इण्डिया और हिन्दुस्तान के प्रति अधिक आकर्षित है, भारत नाम को दंतकथाओं पर आधारित मानता है।

लेखक ने यह पुस्तक १९४४ ई० में लिखी थी, जो १९४६ ई० में प्रकाशित हुई, तब तक बहुत से देशी-विदेशी इतिहासकार भारत के इतिहास पर लिख चुके थे। अतः यह इतिहास पर कोई नवीन रचना नहीं थी और इसमें कोई नई खोज भी वर्णित नहीं है, जिससे इसे भारत की खोज कहा जाए। यदि यह पुस्तक भारतीयों के लिए लिखी गई, तो इसका कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि लेखक भारत के आदि (मूल) निवासी आर्यों, जिनका यह वंशज है, को विदेशी आक्रमणकारी मानकर चल रहा है। यदि पुस्तक विदेशियों के लिए लिखी है, तो भी इसका कोई महत्व नहीं है क्योंकि इसमें उन्हीं का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। जैसे-

आर्य विदेशी आक्रमणकारी थे। रामायण- महाभारत घटना नहीं महाकाव्य हैं। महावीर–बुद्ध का वर्णन है, कुमारिल– शंकराचार्य का नहीं। समुद्रगुप्त का वर्णन कुछ पंक्तियों में है, अकबर का ३ पृष्ठों में। बाबर का गुणगान है राणा सांगा का नाम भी नहीं। गजनवी का पराक्रम वर्णित है, सोमनाथ मंदिर की चर्चा भी नहीं। अकबर बहादुर साहसी, दयालु व गुणवान है और राणा प्रताप अभिमानी, जबकि अकबर से विवाहादि सम्बन्ध स्थापित करने वाले मानसिंह आदि को स्वाभिमानी लिखा है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्थापक सर सैय्यद अहमद खाँ का स्तुतिगान लगभग तीन पृष्ठों में है और पुनर्जागरण के पुरोधा महर्षि दयानन्द की चर्चा कुछ पंक्तियों में, उनमें भी लिखा कि 'वेदों की ओर लौटो' नारे का वास्तविक अर्थ था वेदों के समय से आर्य-धर्म में होने वाले विकास का निषेध। भारत के प्रथम स्वातंत्र्य समर (जिसमें लगभग तीन लाख लोगों ने अपने प्राण दिये) के विषय में मात्र एक पृष्ठ पर 'विद्रोह' कहते हुए लिखा है। गुरु रामसिंह से लेकर नेता जी सुभाष चन्द्र बोस तक के क्रांतिकारियों में से मात्र एक पंक्ति में लोकमान्य तिलक का नाम लिखा है। वीर सावरकर के विषय में 'द हिस्ट्री ऑफ द वार ऑफ इंडिपेंडेंस' (१८५७ का संग्राम) पुस्तक के लेखक के रूप में ही लिखा है। समस्त क्रांतिकारी आन्दोलन गायब है, केवल महात्मा गाँधी जी के अन्दोलन ही स्वतंत्रता दिलाने की ओर बढ़ रहे हैं।

पूज्यपाद श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने 'पं० भगवद्दत्त जी रिसच स्कॉलर' पुस्तक में लिखा है कि एक बार किसी पश्चिमी देश के दूतावास में नियुक्त एक भारतीय आई. ए.एस. अधिकारी से पं० नेहरू ने पूछा कि आई.ए.एस. का प्रशिक्षण प्रापत करते हुए पं० भगवद्दत्त भी आप लोगों को पढ़ाते थे। आपको योरूप में पं० भगवद्दत्त के

व्याख्यानों से क्या लाभ पहुँचा है?

उस अधिकारी ने कहा- "लाभ ही पं० भगवद्दत्त जी से प्राप्त ज्ञान का पहुँच रहा है। शेष तो जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह सब मैक्समूलर, स्मिथ, राबर्ट के ग्रन्थों से भारत के बारे में ज्ञान दिया जाता है। संसार अब भारत के बारे में जानना चाहता है। यदि पश्चिमी लेखकों के आधार पर हम उनको भारतीय सभ्यता के बारे में बताएँ तो यह तो वे जानते ही हैं। कौन हमें सुने व पूछे? जो पं० भगवद्दत्त ने पढ़ाया-सिखाया है, बस वही उनको प्रभावित करता व खींचता है।" नेहरू जी यह सुनकर दंग रह गए। परन्तु वह अपना हठ नहीं छोड़ सकते थे।

इसीलिए राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से 'भारत की खोज' पुस्तक के कुछ प्रमुख प्रसंगों की समीक्षा पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है क्योंकि लेखक ने प्रारम्भ में ही यह लिखा है- "भारत मेरे खून में रचा-बसा था। इसके बावजूद मैंने उसे एक बाहरी आलोचक की नजर से देखना शुरु किया। ऐसा आलोचक जो वर्तमान के साथ-साथ अतीत के बहुत से अवशेषों को, जिन्हें उसने देखा था- नापसंद करता था। एक हद तक मैं उस तक पश्चिम के रास्ते से होकर पहुँचा था। मैंने उसे उसी भाव से देखा, जैसे सम्भवतः किसी पश्चिमी मित्र ने देखा होता।" (पृष्ठ ४)

समीक्षा- अच्छा तो यही होता है कि हम अपने देश को अपनी दृष्टि से देखें अर्थात् अपने पदार्थों को देखने के लिए दूसरों से दृष्टि उधारी न लें। यदि पश्चिम की दृष्टि बिना काम ही न चले तो कोई बात नहीं, वहाँ भी भारत के प्रति दो प्रकार की विचारधाराएं थीं। एक विचारधारा के समर्थक शॉपनहार, जैकालियट आदि थे, जिन्होंने भारत के प्राचीन साहित्य से आत्मिक उत्थान कर अपने मानव जीवन को सार्थक किया और कृतज्ञतावश भारत की प्रशंसा के गीत गाये। दूसरी ओर मैक्समूलर जैसे लोग थे, जो वास्तविकता को जानते हुए भी ईसाईयत को बढ़ावा देने के लिए भारत के प्राचीन साहित्य को तुच्छ व हेय सिद्ध करने पर तुले थे। अपने साम्राज्य को भारत में चिरस्थायी बनाने के लिए अंग्रेजों ने मैक्समूलर आदि की विचारधारा को बढ़ावा दिया, जिससे भारत के पढ़े-लिखे लोग भारत के अतीत को पश्चिम की दृष्टि से देखने लगे। पर प्रस्तुत पुस्तक लिखने के समय तक बहुत से भारतीय विद्वान् पश्चिमी दृष्टिकोण का भण्डाफोड़ कर चुके थे। समाज को प्रेरणा देने के इच्छुक व्यक्ति को सत्य का अन्वेषण करने के लिए स्वदेशी विद्वानों के दृष्टिकोण की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए थी।

"इंडस या सिंधु, जिसके आधार पर हमारे इस देश का नाम पड़ा 'इंडिया' और 'हिन्दुस्तान' और ..."

समीक्षा- इन दोनों नामों का आधार चाहे कुछ भी हो, पर यह सत्य है कि ये दोनों नाम विदेशियों द्वारा दिये गये हैं। सिन्धु नदी तो पहले (वैदिक काल में) भी थी, तब हम हिन्दू नहीं कहलाए और यह देश हिन्दुस्तान नहीं बना और जिस सिन्धु के कारण आर्यों को हिन्दू बताया जाता है, वह आज भी सिन्धु ही है, उस नदी का नाम हिन्दू क्यों नहीं बना? हिन्दू नाम मुस्लिम काल की देन है और 'इंडिया' अंग्रेजों की, जिनका इतिहास बहुत कम है। लेखक यदि वास्तव में भारत की खोज करना चाहता था, तो उसे 'डिस्कवरी ऑफ भारत' शीर्षक लिखना चाहिये था और सबसे अच्छा तो यही था कि इस पुस्तक का नाम 'डिस्कवरी ऑफ आर्यावर्त' लिखा जाता, क्योंकि पुस्तक का प्रारम्भ उनघटनाओं से है, जब इस देश का नाम आर्यावर्त प्रचलित था। जब हम पुरानी चर्चा करना चाहते हैं, तो विदेशियों द्वारा दिये गये अत्याधुनिक नामों से मोह क्यों है?

३. "अशोक के पाषाण स्तंभ जैसे अपने शिलालेखों के माध्यम से मुझे एक ऐसे आदमी के बारे में बताते थे, जो खुद एक सम्राट होकर भी किसी अन्य राजा और सम्राट से महान था। फतेहपुर सीकरी में, अपने साम्राज्य को भुलाकर बैठा अकबर विभिन्न मतों के विद्वानों से संवाद और वाद-विवाद कर रहा था। वह जिज्ञासु भाव से मनुष्य की शाश्वत समस्याओं का हल तलाश कर रहा था।"

समीक्षा- यद्यपि सम्राट अशोक की नीति पर चलकर

भविष्य में देश को शक-हूणों से बहुत हानि हुई, तथापि सम्राट अशोक का व्यक्तिगत जीवन बहुत ऊँचा था, जिसके साथ अकबर का नाम असंगत लगता है। उसके साथ तो सम्राट विक्रमादित्य का नाम लिखा जा सकता है, जिसकी उदारता और प्रजा-वत्सलता की कहानियाँ भारतीय जनमानस में अभी तक बसी हैं या फिर भारत के सर्वविध उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाले सम्राट समुद्रगुप्त का नाम लिखा जा सकता है अथवा शीलादित्य सम्राट हर्षवर्धन का हो सकता है। (एक पत्नीव्रत धारण करने वाला यह महान सम्राट राज्य कार्य के पीछे अपनी भूख और नींद को भी भूल जाता था। बरसात के अतिरिक्त सदा अपने राज्य में दौरे करता और फूस के खेमों में ही पड़ाव किया करता था। हर पाँच वर्ष बाद प्रयाग के संगम पर तीन महीने तक दानसत्र चलाकर पाँच वर्षों की सारी सम्पत्ति यहाँ तक कि अपने वस्त्र और आभूषण भी दान कर देता था। उसने अपने जीवन में ६ बार ऐसा किया) जबकि अकबर तो जीवन भर राज्य लिप्सा में रक्त-पात करता रहा। उसके विरोधियों के अतिरिक्त उसके दरबारियों ने, यहाँ तक कि उसके बेटे जहाँगीर ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह किये। वह अपनी समस्याओं का समाधान तलाश कर रहा था या मनुष्य की शाश्वत समस्याओं का?

४. "ये पुराने तुर्क और दूसरी जातियाँ जो अफगानिस्तान और मध्य एशिया में बसी थीं, इस्लाम के आने से पहले बौद्ध थीं और उससे भी पहले वैदिक काल में हिंदू थीं।"

समीक्षा- यह सत्य है कि इस्लाम से पहले ये जातियाँ बौद्ध थीं, पर वैदिक काल में हिन्दू नहीं, आर्य थीं और बौद्धकाल में भी आर्य ही थीं, क्योंकि हिन्दू नाम तो मुस्लिम काल में प्रचलित हुआ है। यही कारण है कि हमारे शास्त्रों, स्मृतियों, महाकाव्यों व पुराणों में भी हिन्दू शब्द नहीं मिलता। फारसी भाषा के इस शब्द के अर्थ से अनभिज्ञ व रूढ़ होने के कारण आर्यों ने अब इसे स्वीकार कर लिया है, फिर भी यह विदेशियों द्वारा दिया गया नाम है।

५. "वे लोग जो किसी गैर-भारतीय धर्म को मानने वाले थे या भारत में आकर यहीं बस गए, कुछ ही पीढ़ियों के गुजरने के दौरान स्पष्ट रूप से भारतीय हो गए। जैसे यहूदी, पारसी और मुसलमान। जिन भारतीयों ने इन धर्मों को स्वीकार कर लिया, वे भी धर्म-परिवर्तन के बावजूद भारतीय बने रहे।"

समीक्षा- भारत में बसने के कारण तो वे सभी यहूदी, पारसी, मुसलमान आदि भारतीय बने, पर संस्कृति, सभ्यता व धर्म (मत) के कारण नहीं क्योंकि मुसलमानों के विषय में देश इस कटु सत्य को कई बार अनुभव कर चुका है। इसी कारण हिन्दुओं के तथाकथित उच्च वर्गों से अपमानित होकर भी डॉ० अम्बेडकर मुसलमान नहीं बने, क्योंकि उनका अनुभव था कि इस्लाम एक सच्चे मुसलमान को कभी भी भारत को अपनी मातृभूमि मानने की स्वीकृति नहीं देगा। अपवाद रूप में कुछ हो सकते हैं, पर वे सम्पूर्ण समुदाय के प्रतिनिधि नहीं हो सकते। पाकिस्तान बनने का कारण मजहब, संस्कृति व सभ्यता का अलगाव ही तो था।

"भारत के अतीत की सबसे पहली तस्वीर उस सिंधु घाटी सभ्यता में मिलती है, जिसके अवशेष सिंध में मोहनजोदड़ो और पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा में मिले हैं। इन खुदाइयों ने प्राचीन इतिहास की समझ में क्रान्ति ला दी है।"

समीक्षा- इन खुदाइयों से प्राचीन इतिहास की समझ में क्रान्ति आना तो उन पश्चिमी ईसाई इतिहास लेखकों के लिए था, जो बाइबल के आगे सिर झुकाकर सृष्टि की उत्पत्ति ही ४००४ ईसा पूर्व में हुई मानते थे और सारे संसार का इतिहास २००० ईसा पूर्व तक में संमेटने की हठ करते थे। उन कुए के मेंढकों को हैरानी तो तब हुई कि जिस काल में बाइबल सृष्टि की उत्पत्ति बाता है, उस काल में तो भारत की सभ्यता उननति के शिखर से गिर चुकी थी। ये नगर उसकी साक्षी दे रहे हैं और उन (इतिहासकारों) की मान्यता का उपहास कर रहे हैं, तो धूर्तों ने शरारत की कि यह तो द्रविड़ सभ्यता है, जिसे

भारत पर आक्रमण का आर्यों ने नष्ट किया था। अर्थात् आर्यों के भारत पर आक्रमण करने की कल्पना पर मोहर लगा दी। जबकि भारत के अतीत की तस्वीर तो रामायण महाभारत काल का इतिहास भारतीय जन मानस में आज भी जीवित है और उस काल की कुछ परम्पराओं का कुछ विकृत रूप में आर्यों के वंशज (हिन्दू) पालन कर रहे हैं। जीवित इतिहास की उपेक्षा कर खण्डहरों में इतिहास की कल्पना करना पाश्चात्य शैली का इतिहास है। इसीलिए तो किसी विद्वान् ने कहा है- भारत ने इतिहास लिखा है और पश्चिमी देशों ने 'हिस्ट्री'।

७. "आश्चर्य की बात है कि यह सभ्यता प्रधान रूप से धर्मनिरपेक्ष सभ्यता थी। धार्मिक तत्व मौजूद होने पर भी इस पर हावी नहीं थे।"

समीक्षा- सब दूसरों को अपने ही दृष्टिकोण से देखतें हैं। धर्मनिरपेक्षता शब्द तो वर्तमान परिस्थिति की देन है और इस राजनैतिक शब्द का जन्म भी मुख्यतः हिन्दू (बौद्ध, जैन, सिक्ख, पौराणिक, वैदिक आदि) का मुस्लिम सम्प्रदाय से तालमेल स्थापित करने के कारण हुआ। सिन्धु सभ्यता के काल में ईसाई, मुस्लिम आदि धरती पर पैदा भी नहीं हुए थे, भारत में आना तो दूर। वैसे भी धर्मनिरपेक्ष शब्द उचित नहीं है, मतनिरपेक्ष होना चाहिए। स्वतंत्रता के बाद वोटों के लालच में इस शब्द का दुरुपयोग हुआ है। संसार का सबसे प्राचीन धर्म वैदिक धर्म ही है और सिन्धु सभ्यता के काल में आस-पास के देशों में भी वैदिक धर्म का ही प्रचार था, जिसके विकृत स्वरूप को हम हिन्दू कह सकते हैं। खुदाई से प्राप्त अग्निकुण्ड (यज्ञकुण्ड), वैदिक त्रेतावाद को सिद्ध करने वाली मुहरें, शिवलिंग, योगासन मुद्रा की मूर्तियाँ, स्वस्तिक चिह्न आदि इसे वैदिक (हिन्दू) सभ्यता ही सिद्ध करते हैं।

८. "यह देखकर अचरज होता है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में कितना कुछ ऐसा है, जो हमें चली आती परंपरा और रहन-सहन की, लोक-प्रचलित रीति-रिवाजों की, दस्तकारी की, यहाँ तक कि पोशाकों के फैशन की याद दिलाता है।"

समीक्षा- इसे (सिंधु सभ्यता को) द्रविड़ सभ्यता मानने वालों को आश्चर्य हो सकता है, हमें नहीं। क्योंकि हम तो उसे अपने पूर्वजों (आर्यों) की सभ्यता मानते हैं। इसीलिए उनकी परम्परा का पालन करते रहे और उस परंपरा को क्रूर, बर्बर मुस्लिम आक्रान्ताओं से पीड़ित होकर भी नहीं छोड़ा। पर अब स्वच्छन्दता की हवा में नेताओं का अनुकरण कर सब छूटता जा रहा है, आश्चर्य तो यही है।

९. "सिन्धु घाटी की सभ्यता के ये लोग कौन थे और कहाँ से आए थे, इसका हमें अब भी पता नहीं है। यह भी संभावना है कि इनकी संस्कृति इसी देश की संस्कृति थी।"

समीक्षा- कितने धूर्त थे पाश्चात्य लेखक जो भारत में फूट डालने के लिए आर्य और द्रविड़ जातियों की कल्पना कर आर्यों को आक्रमणकारी प्रचारित कर गये और हमारे प्रबुद्ध लेखकों की शक्ति व समय इस मिथ्या कल्पना को असत्य सिद्ध करने में ही व्यर्थ जा रहा है। यह कितनी सीधी सी बात है कि जब आज भी उस सभ्यता की परंपरा का इस देश के लोग पालन कर रहे हैं, तो अवश्य इनका उनसे सम्बन्ध रहा होगा अर्थात् वे वर्तमान लोगों के पूर्वज थे। अंग्रेज तो इन्हें द्रविड़ कहकर अपने लक्ष्य में सफल हो गये। के.वी. रामकृष्ण राव के अनुसार तमिल 'द्रविड़' शब्द के प्रयोग से पुरातन काल में पूर्णतया अनभिज्ञ थे। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग आधुनिक काल से ही करना आरम्भ किया था विशेष रूप से तब, जब यूरोपियन विद्वानों का दक्षिण में आगमन हुआ। १९२१-१९२२ ई० में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के बाद यह दुष्प्रचार किया गया कि मोहनजोदड़ो के निवासी द्रविड़ या अनार्य थे। इससे डी.एम.के. की स्थापना और ब्राह्मण एवं हिन्दी विरोधी आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। यद्यपि श्रीवास्तव, कैनेडी, डेल्ज़ एवं जोशी ने आर्य आक्रमण की धारणा का सप्रमाण खण्डन किया, परन्तु शासन के सशक्त तथा सतत प्रचार के कारण उनके स्वर दबे रह गये।

श्री सत्यपाल शर्मा ने १६६७ में 'सिन्धु सभ्यता के प्राचीन नगर' पुस्तक में स्द्धि किया है कि मोहनजोदड़ो नगर के निर्माता मुंजवान पर्वत पर रहते थे। मुंजवान को ऋग्वेद में मौजवत भी कहा गया है। जब यहाँ के कुछ लोग मुंजवान पर्वत को छोड़कर सिन्ध प्रान्त में आकर बस गए, तो वे अपने आपको मुंजान, मौंजाल अथवा मोहझाल कहने लग गए। अब ये मोहचाल कहे जाते हैं। मोंहझाल या मोहंजाल ब्राह्मणों में यह परम्परा है कि उनके पूर्वज मंजवान पर्वत (हिमालय) पर रहते थे। अतः वे मौंजायन नाम से प्रसिद्ध हुए। वे व्यापारी थे और सोमलता का व्यापार करते थे। व्यापार करने के लिये जब वे मेहत्न नदी के तट पर बस गये, तो उनका नदी वाचक नाम मेहते पड़ा। इस प्रकार मौंजायन, मोहंजाल और मोहंजोदड़ो समानार्थक ही हैं जिनका अर्थ है मौज नगर जिनका घर है- अयन, आलय और दड़ो। (वेदवाणी, भाद्रपद सं० २०५४ वि०)

'भारत की खोज' लिखने के समय तक भी सिन्धु सभ्यता को वैदिक सभ्यता सिद्ध करने वाली खोज हो चुकी थी। अतः लेखक को राष्ट्रहित को समक्ष रखकर उन्हीं को लिखना चाहिए था अथवा बाद में टिप्पणी (प्रकाशकीय) लिखनी चाहिए थी। जबकि इतनी खोजों के बाद भी बच्चे उसी देश तोड़क विचारधारा को पढ़ रहे हैं, तो ऐसा लगता है कि हम राष्ट्रहित के प्रति सजग नहीं हैं या हम अंग्रेजों के कार्य में सहयोग कर रहे हैं। हम क्यों भूल जाते हैं कि आर्य और द्रविड़ जातियों की कल्पना ने दक्षिणवासियों के मन में उत्तर भारतीयों के प्रति इतना जहर भर दिया है कि ४ सितम्बर १६७७ को संसद में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य सर फ्रैंक एन्थोनी ने माँग की थी कि भारतीय संविधान में परिगणित भारतीय भाषाओं की सूची में से संस्कृत को निकाल देना चाहिए क्योंकि यह विदेशी आक्रान्ता आर्यों द्वारा इस देश में लाई गई विदेशी भाषा है। पुनः २३ फरवरी १६७८ को द्रमुक सदस्य के० लक्ष्मणन ने राज्य सभा में माँग की थी कि अन्तरिक्ष में छोड़े गये प्रथम भारतीय उपग्रह का नाम 'आर्यभट्ट' नहीं रखा जाना चाहिए था, क्योंकि यह विदेशी नाम है। (आर्यों का आदिदेश.... पृ० १२१)

विदेशियों के षड्यंत्र से भ्रमित इन अविद्या के अवतारों से पूछना चाहिए कि यदि वेद आर्यों के ही हैं और संस्कृत विदेशी भाषा है, तो क्या कारण है कि एक-एक मात्रा व स्वर को ध्यान में रखकर वेदों को कण्ठस्थ करने की परम्परा अभी तक भी दक्षिण भारत में है? आज भी द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि नाम उन पंडितों के साथ क्यों जुड़ा हुआ है? और दक्षिण भारत की लगभग सभी भाषाओं में (जिन्हें द्रविड़ भाषा कहा जाता है) ५० से ६० प्रतिशत तक संस्कृत के शब्द क्यों मिलते हैं? बौद्ध-जैन मत को परास्त कर वेद धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने वाले शंकराचार्य भक्ति-मार्ग का प्रचार करने वाले रामानुजाचार्य, बसवेश्वर, वल्लभाचार्य, स्वामी रामानन्द आदि (जो लगभग २५०० वर्ष पहले तक हुए) को क्यों नहीं पता चला कि हम द्रविड़ों को आर्यों ने मार-पीटकर दक्षिण में धकेला था, जो वे आर्यों की परम्परा का प्रचार करते रहे?

१८५६ में काल्डवेल ने जो शरारत की थी, उस पर पानी फेरते हुए सर जार्ज कैम्पवेल नामक नृवंशवैज्ञानिक ने लिखा- "नृवंशशास्त्र के आधार पर उत्तर और दक्षिण के समाज में कोई विशेष भेद नहीं है।.... द्रविड़ नाम की कोई जाति नहीं है। निस्सन्देह दक्षिण भारत के लोग शारीरिक गठन, रीति-रिवाज और प्रचार-व्यवहार में केवल एक आर्य समाज है।"

और मिस्टर म्यूर ने लिखा है- "जहाँ तक मुझे ज्ञात है, संस्कृत के किसी ग्रन्थ में, यहाँ तक कि प्राचीनतम साहित्य में भी, आर्यों के विदेशी होने का संकेत नहीं मिलता।

(आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता १२०, १२२)

(क्रमशः)

❑❑

स्वराज्य के प्रथम प्रस्तोता : महर्षि दयानन्द !

(रामनिवास 'गुणग्राहक' मो. 09971171797, 08955665354)

महर्षि देव दयानन्द को सारा संसार एक धर्म सुधारक के रूप में ही जानता है। राष्ट्र के सम्बन्ध में उनके महान योगदान पर अब तक हमारी दृष्टि नहीं जा सकी। उनका राष्ट्रीय चिन्तन इतना प्रखर था कि उनके कार्यों पर दृष्टिपात करने से सहज आभास हो जाता है कि उनका हर कार्य स्वाधीनता का उत्प्रेरक था। सन् १९११ की जनसंख्या के अध्यक्ष श्री ब्लण्ट लिखते हैं- 'दयानन्द मात्र धार्मिक सुधारक नहीं था। वह महान देशभक्त था। यह कहना ठीक होगा कि उनका धार्मिक सुधार राष्ट्रीय सुधार का एक उपाय था।" महर्षि के इस राष्ट्रीय महत्व को अंग्रेज उनके जीवनकाल में ही भाँग गये थे मगर हम आज तक उधर से परिचित न हो सके। महर्षि की दिव्य दृष्टि तो देखिए कि स्वाधीनता के लिए जितने भी महत्वपूर्ण आन्दोलन चलाए गए, उन सबकी नींव महर्षि उस समय रख गए जब कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था।

गाँधी जी ने नमक आन्दोलन १९३० में शुरू किया था, मगर महर्षि ने १८७५ में ही इसकी शुरुआत कर दी थी। अपने समग्र क्रान्तियों के स्रोत, समस्त दोषों को भस्मसात कर डालने वाले, कालजयी आग्नेय ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रथम संस्करण में लिखा था- "नोन (नमक) के बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता।.... वे मेहनत-मजदूरी करके जैसे तैसे निर्वाह करते हैं, उसके ऊपर भी नोन का कर दण्ड तुल्य रहता है। अतः लवणादि के ऊपर कर नहीं रहना चाहिए।" इसी प्रकार विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार व स्वदेशी के प्रयोग के मूल प्रेरक भी महर्षि दयानन्द ही थे। ऋषि ने बड़े संक्षेप में कहा था- "इतने से ही समझ लो कि अंग्रेज अपने देश के जूते का जितना मान करते हैं, उतना अन्य देश के मनुष्यों का भी नहीं करते।" उन्होंने बड़ी पीड़ा के साथ लिखा है "जब परदेशी हमारे देश में व्यापार करें, तो दरिद्रता व दुःख के सिवाय कुछ भी नहीं होगा।" ऋषि दयानन्द के इन वाक्यों से श्री ब्लण्ट के कथन की सार्थकता सिद्ध होती है। महर्षि के इस स्वदेशी के प्रयोग व विदेशी वस्तु के बहिष्कार के वक्तव्य से प्रेरणा लेकर सन् १८७९ में ही आर्य समाज लाहौर के सदस्यों ने स्वदेशी के प्रयोग व विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की घोषणा की थी, जिसका विवरण १४.८.७९ के 'स्टेट्स मैन' में प्रकाशित हुआ था। इतना ही नहीं उनके हृदय की वेदना वहाँ अधिक मुखर हो उठती है, जब वे छावली निवासी ठाकुर ऊधोसिंह को विदेशी वेशभूषा में देखकर कहते हैं- "क्या तुम विदेशी कपड़ों से बने इस नए वेश से विभूषित होकर अपने पिताजी से अधिक सुसंस्कृत हो गए हो"?

महर्षि का राष्ट्रप्रेम व उनकी गहन व्यथा बड़ी विलक्षण थी। महर्षि दयानन्द पर जो आरोप सर्वाधिक लगाया जाता है, वह है मूर्तिपूजा का खण्डन। मगर उसके दर्द को आम आदमी नहीं समझ सकता। उन्होंने मूर्ति पूजा का कटु खण्डन भी राष्ट्र के लिये ही किया था। देखो, अपनी पीड़ा जनता में परोसते हुए उनके मार्मिक शब्द- "नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप- नाम- चरित्र युक्त मूर्तियों के पुजारी आदि का ऐक्य मत नष्ट होकर विरुद्ध मत में चलकर आपस की फूट बढ़ाके देश का नाश करते हैं। जो मूर्ति के भरोसे अपनी जय व शत्रु की पराजय मान बैठे रहते हैं, उनका पराजय होकर राज्य स्वातन्त्र्य और सुख उनके शत्रुओं के अधीन हो जाता है। क्यों पत्थर पूजकर सत्यानाश को प्राप्त हुए? देखो, जितनी मूर्तियाँ पूजी हैं, उनके स्थान पर शूरवीरों की

पूजा करते, तो कितनी रक्षा होती?" क्या इन शब्दों को पढ़कर लगता है कि ये किसी संन्यासी के शब्द होंगे? इनमें महर्षि का प्रखर राष्ट्रवादी चिन्तन, उनका उग्र क्रान्तिकारी स्वरूप प्रकट होता है।

अब हिन्दी आन्दोलन का बीजारोपण करने वाले देव दयानन्द को देखिये। १८८२ में अंग्रेज सरकार ने राजकाज की भाषा निर्धारित करने के लिए 'हण्टर कमीशन' का गठन किया, तो दयानन्द ने सभी आर्य समाजों को आज्ञा दी कि हिन्दी के पक्ष में अधिक से अधिक लोगों के हस्ताक्षर करा कर कमीशन के पास भेजें। फर्रुखाबाद के बाबू दुर्गादास जी को उन्होने लिखा था- 'यह काम एक के करने का नहीं है और अवसर चूके, तो वह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है मुख्य सुधार की नींव पड़ जाएगी।" ये है महर्षि का हिन्दी प्रेम, जिसे वे 'आर्य भाषा' कहा करते थे। यही नहीं जब मैडम ब्लेवैटस्की ने स्वामी जी से उनके ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद करने की अनुमति माँगी, तो महर्षि ने जो उत्तर दिया वो अपने आप में बड़ा विलक्षण है- उन्होंने उत्तर दिया- 'मेरा विचार आपको अनुवाद से रोकने का नहीं, क्योंकि बिना अंग्रेजी अनुवाद के यूरोपियन जातियाँ सत्य के प्रकाश को नहीं पा सकेंगी। किन्तु भारत की जनता मेरे भाष्य को अंग्रेजी में प्रकाशित होने पर संस्कृत और हिन्दी के अभ्यास को त्याग देगी। मेरे वेदभाष्य को पढ़ने के लिए संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन, जो मेरा लक्ष्य है वह नष्ट हो जाएगा।" ये है महर्षि की राष्ट्र में प्राणशक्ति फूँकने की दिव्य योजना, जिसे स्वतन्त्रता मिलते ही हमारे भारत रत्न ने बड़ी निर्दयता से कुचल दिया। इस देश की अन्त्येष्टि-क्रिया का कार्य भी उसी के एक सगे सम्बन्धी महानायक ने संस्कृत को निष्कासित करने के प्रयास के साथ प्रारम्भ कर दिया था। मगर एक कहावत है 'कौए के कोसने से पशु मर जाएँ तो संसार शून्य हो जाए।'

अंग्रेज जाति ही बड़ी कुटिल व क्रूर रही है। कम से कम भारत के अनुभव तो यही कहते हैं। भारत में अपना राज्य अनन्त काल तक स्थिर रखने के लिए उन्होंने भारत के गौरवशाली, पराक्रमपूरित, स्फूर्तिदायक इतिहास को ही विकृत करने के कुत्सित प्रयास किये, जिन्हें हमारी स्वातन्त्र्येतर सरकार ने पूर्णतः सफल बनाने में अपनी पूरी शक्ति झौंक दी। नेहरू की 'भारत एक खोज' इसका ज्वलन्त प्रमाण है। तथा आज तक वही हमारे युवकों को पढ़ाया जा रहा है। ६ अप्रैल १८६६ को लन्दन के रॉयल एशियाटिक सोसायटी के बन्द कमरे में यह षड्यन्त्र रचते हुए मि० एडवर्ड टामस ने कहा था- 'आक्सस नदी से आर्यन आक्रामकों की लहरें अरिमानियाँ प्रान्त और हिन्दुकुश के मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुईं।" इसका तीव्र प्रतिकार करते हुए महर्षि ने लिखा है- 'किसी संस्कृत-ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहाँ के जंगलियों से लड़कर, जय पा के उन्हें निकाल के इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? हमारे प्राचीन गौरव को स्थिर कर देश में स्वाभिमान जगाने के लिये महर्षि ने लिखा है- 'जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं.... यह आर्यावर्त्त ऐसा देश है, जिसके सदृश भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं है। इसीलिए इसे स्वर्णभूमि कहते हैं।"

कितना महान चमत्कार कर दिया दयानन्द ने कि जो मैक्समूलर भारत के सांस्कृतिक विनाश के लिए आया था। जिसने वेदों का भाष्य इसी दृष्टि से किया था। जो वेदों को गडरियों के गीत कहता था- महर्षि को पढ़कर उसकी आत्मा सत्य को स्वीकार कर ही लेती है। आई.सी.एस. में चयनित युवकों को भारत भेजते हुए मैक्समूलर ने कहा था- 'भाषा, धर्म, दर्शन, विज्ञान, कानून, परम्पराएँ- हर विषय का अध्ययन करने के लिए भारत ही सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र है। आपको अच्छा

लगे या न लगे, परन्तु वास्तविकता यही है कि मानवता के इतिहास की बहुमूल्य एवं निर्देशक सामग्री भारत-भूमि में संचित है, केवल भारत भूमि में।"

आगे उसने कहा- ऐसे में हम जब भी पूर्व की ओर जाएँ, तब हमें यही सोचना चाहिए कि हम अपनी पुरानी स्मृतियों को संजोए हुए अपने पुराने घर की ओर जा रहे हैं।" आज के पाश्चात्य अन्धानुकरण करने वाले, पश्चिम को ही ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता संस्कृति का स्रोत कहने वाले बुद्धिजीवी अपने गौरव पर दृष्टिपात करेंगे? फ्रान्स के महान सन्त क्रूजे ने लिखा है- 'यदि कोई देश वास्तव में मनुष्य जाति का पालक होने और उस आदि सभ्यता का, जिसने विकसित होकर संसार के कोने-कोने में ज्ञान का प्रसार किया, स्रोत होने का दावा कर सकता है, तो वह निश्चय ही भारत है।"

इस प्रकार स्वाधीनता का बीजारोपण करने वाले, महान क्रान्तिकारी युग पुरुष दयानन्द के इस राष्ट्रीय चिन्तन को हम युवा पीढ़ी के मस्तिष्क में भरकर राष्ट्र को सच्चे अर्थों में स्वराज्य बना सकते हैं। जब तक भारत में भारतीयता गौरवान्वित नहीं होगी, तब तक इसे स्वाधीन कहना एक धोखे के सिवाय कुछ भी नहीं। संसार का यही एक अभागा देश है, जिसकी मातृभाषा राजभाषा नहीं है, जिसका संविधान विदेशी भाषा में है। जिसके इतिहास को उसी के कथित बुद्धिजीवी विकृत कर रहे हैं। हमारी मानसिकता के अतिशय विखण्डन के परिणामस्वरूप हमारे महापुरुष भी बँट कर रह गए हैं। आज महर्षि दयानन्द केवल आर्य समाज के संस्थापक बन कर रह गए हैं, उनकी शिक्षाएँ सीमित लोग ही पढ़ते हैं। ऐसे में इस राष्ट्र-पुरुष के राष्ट्रीय चिन्तन को अपना कर, उनके महान योगदान को स्मरण करके उसके प्रति न केवल सच्ची श्रद्धाञ्जलि दे सकते हैं बल्कि अपने प्यारे देश के प्राचीन गौरव को भी वापस पा सकते हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर की १२२वीं जयंती (१४ अप्रैल २०१३)

(आई.डी. गुलाटी, संस्थापक- भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, बुलंदशहर)

आपने कहा था कि-

"सारी दुनिया की दौलत मिले तो भी इस्लाम या ईसाई मत स्वीकार नहीं करूँगा।"

"यह एक भयानक सत्य है कि ईसाई-मुस्लिम बनने से अराष्ट्रीय होते हैं। साथ ही यह भी तथ्य है कि ईसाइयत-इस्लाम, मतान्तरण के बाद भी जातिवाद नहीं मिटा सकते हैं।"

"मतान्तरण समाज के लिए एक अभिशाप है।"

यह भी सत्य है कि-

(१) निजाम हैदराबाद ने डॉ० अम्बेडकर को एक करोड़ (वर्तमान मूल्य लगभग रु. २०० करोड़) लेकर मुस्लिम धर्म स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा था, जिसे भारतरत्न सावरकरवादी सोच के डॉ० अम्बेडकर ने अस्वीकार कर दिया था।

(२) आपने संविधान बनाकर देते समय स्पष्ट रूप से कहा था कि यह संविधान उनकी सोच-चिन्तन तथा मानसिकता के अनुरूप नहीं है, बल्कि उनसे ऐसा संविधान बनवाया गया है।

अपील

धर्म बदलने के बाद जिन्हें दलित ईसाई और दलित मुस्लिम का दर्जा मिला है और उनके साथ समानता का व्यवहार नहीं हो रहा है उनसे अनुरोध किया जाता है कि वे अपने घर लौट आवें। व आर्य समाज के सदस्य बनकर वैदिकधर्मी बनें। उन्हें वेद पठन का पूरा अधिकार है। आर्य समाज में जातिवाद नहीं है। उन्हें पूरा सम्मान मिलेगा। वे आर्य समाजों के साप्ताहिक हवन व सत्संग में आकर तो देखें।

महर्षि दयानन्द की गायादि के प्रति संवेदना (गोकरुणानिधि)

(स्वामी वेदरक्षानन्द सरस्वती गुरुकुल कालवा)

हे धार्मिक सज्जन लोगो! आप इन (गायादि) पशुओं की रक्षा तन, मन और धन से क्यों नहीं करते? हाय!! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय, बकरे आदि पशु और मोर आदि पक्षियों को मारने के लिये ले जाते हैं, तब वे अनाथ तुम हम को देखके राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाशित करते हैं- कि देखो। हमको बिना अपराध बुरे हाल से मारते हैं और हम रक्षा करने और मारने वालों को भी दूध आदि अमृत पदार्थ देने के लिये उपस्थित रहना चाहते हैं और मारे जाना नहीं चाहते। देखो, हम लोगों का सर्वस्व परोपकार के लिये है और हम इसीलिये पुकारते हैं कि हम को आप लोग बचावें। हम तुम्हारी भाषा में अपना दुःख नहीं समझा सकते और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते, नहीं तो क्या हम में से किसी को कोई मारता, तो हम भी आप लोगों के सदृश अपने मारने वालों को न्यायव्यवस्था से फाँसी पर न चढ़वा देते। हम अतीव कष्ट में हैं, क्योंकि कोई भी हमको बचाने में उद्यत नहीं होता और जो कोई होता है, तो उससे मांसाहारी द्वेष करते हैं।

अस्तु, वे स्वार्थ के लिये द्वेष करें तो करो, क्योंकि 'स्वार्थी दोषं न पश्यति' जो स्वार्थ साधने में तत्पर है, वह अपने दोषों पर ध्यान नहीं देता, किन्तु दूसरों की हानि हो तो हो मुझको सुख होना चाहिए, परन्तु जो उपकारी हैं, वे इनके बचाने में अत्यन्त पुरुषार्थ कर जैसा कि आर्य लोग सृष्टि के आरम्भ से आज तक वेदोक्त रीति से प्रशंसनीय कर्म करते आये हैं, वैसे ही सब भूगोलस्थ सज्जन मनुष्यों को करना उचित है।

धन्य है आर्यावर्त्त देशवासी आर्य लोगों को कि जिन्होंने ईश्वर के सृष्टिक्रम के अनुसार परोपकार ही में अपना तन, मन, धन लगाया और लगाते हैं। इसीलिये आर्यावर्त्तीय राजा, महाराजाज, प्रधान और धनाढ्य लोग आधी पृथ्वी पर जंगल रखते थे कि जिससे पशु ओर पक्षियों की रक्षा होकर औषधियों का सार दूध आदि पवित्र पदार्थ उत्पन्न हों, जिनके खाने पीने से आरोग्य, वृद्धि, बल, पराक्रम आदि सद्गुण बढ़े और वृक्षों के अधिक होने से वर्षा, जल और वायु में आर्द्रता और शुद्धि अधिक होती है। पशु और पक्षी आदि के अधिक होने से खात भी अधीक होता है। परन्तु इस समय के मनुष्यों का इससे विपरीत व्यवहार है कि जंगलों को काट और कटवा डालना, पशुओं को मार और मरवा खाना और विष्ठा आदि का खात खेतों में डाल अथवा डालवाकर रोगों में वृद्धि करके संसार का अहित करना स्वप्रयोजन साधना और पर-प्रयोजन पर ध्यान न देना, इत्यादि काम उलटे हैं।

'विषादप्यमृतं ग्राह्यम्' सत्पुरुषों का यही सिद्धान्त हैं कि विष से भी अमृत लेना। इसी प्रकार गाय आदि का मांस विषवत् महारोगकारी को छोड़कर उनसे उत्पन्न हुये दुध आदि अमृत रोगनाशक हैं उनको लेना। अतएव इनकी रक्षा करके विषत्यागी और अमृतभोजी सबको होना चाहिये। सुनो बन्धुवर्गो! तुम्हारा तन, मन, धन गाय आदि की रक्षा रूप परोपकार में न लगे तो किस काम का है? देखो! परमात्मा का स्वभाव कि जिसने सब विश्व और सब पदार्थ परोपकार ही के लिये रच रखे हैं, वैसे तुम अपना तन, मन, धन परोपकार के ही अर्पण करो। बड़े आश्चर्य की बात है कि पशु को पीड़ा न होने के लिये न्याय पुस्तक में व्यवस्था भी लिखी है कि जो पशु दुर्बल और रोगी हों, उनको कष्ट न दिया जावे और जितना बोझा सुखपूर्व उठा सकें उतना ही उन पर धरा जावे। श्रीमती राजराजेश्वरी श्री विक्टोरिया महारानी का विज्ञापन भी प्रसिद्ध है कि इन अव्यक्तवाणी पशुओं को जो जो दुःख दिया जाता है, वह वह न दिया जाये तो क्या भला मार डालने से भी अधिक कोई दुःख होता है? क्या फाँसी से अधिक दुःख बन्दीगृह में होता है? जिस किसी अपराधी से पूछा जाय कि तू फाँसी चढ़ने में प्रसन्न है या बन्दीघर में रहने से? तो वह

स्पष्ट कहेगा कि फाँसी में नहीं किन्तु बन्दीघर में रहने में।

और जो कोई मनुष्य भोजन करने को उपस्थित हो उसके आगे से भोजन के पदार्थ उठा लिये जावें और उसको वहाँ से दूर किया जो, तो क्या वह सुख मानेगा? ऐसे ही आजकल के समय में कोई गाय आदि पशु सरकारी जंगल में जाकर घास और पत्ता जो कि उन्हीं के भोजनार्थ है, बिना मसहूल दिये खावे या खाने को जाये तो बेचारे उन पशुओं और उनके स्वामियों की दुर्दशा होती है। जंगल में आग लग जावे तो कुछ चिन्ता नहीं, किन्तु वे पशु न खाने पावें।

हम कहते हैं कि किसी अति क्षुधातुर राजा वा राजपुरुष के सामने आये चावल आदि व डबल रोटी आदि छीनकर न खाने देवें ओर और उनकी दुर्दशा की जावें, तो जेसा दुःख इनको विदित होगा? क्या वैसा ही उन पशु पक्षियों और उनके स्वामियों को न होता होगा?

ध्यान देकर सुनिये कि जैसा दुःख-सुख अपने को होता है वैसा ही औरों को भे समझा कीजिये। और यह भी ध्यान रखिये कि वे पशु आदि और उनके स्वामी तथा खेती आदि कार्य करने वाले प्रजा के पशु और मनुष्यों के अधिक पुरुषार्थ ही से राजा प्रजा का ऐश्वर्य अधिक बढ़ता और न्यून से नष्ट हो जाता है इसीलिये राजा प्रजा से कर लेता है कि उनकी रक्षा यथावत् करें, न कि राजा और प्रजा के जो सुख के कारण गाय आदि पशु हैं उनका नाश किया जावे। इसलिये आज तक जो हुआ सो हुआ, आगे आंखें खोलकर सबके हानिकारक कर्मों को न कीजिये और न करने दीजिये। हाँ, हम लोगों का यही काम है कि आप लोगों को भलाई और बुराई के कामों को जता देवें और आप लोगों का यही काम है कि पक्षपात छोड़ सबकी रक्षा और बढ़ती करने में तत्पर रहें। सर्वशकितमान् जगदीश्वर हम और आप पर पूर्ण कृपा करें कि जिससे हम और आप लोग विश्व के हानिकारक कर्मों को छोड़कर सर्वोपकारक कर्मों को करके सब लोग आनन्द में रहें। इन सब बातों को सुन मत डालना किन्तु सुन रखना। इन अनाथ पशुओं के प्राणों को शीघ्र बचाना।

हे महाराजधिराज जगदीश्वर! जो इनको कोई न बचावे तो आप इनकी रक्षा करने और हमसे कराने में शीघ्र उद्यत हूजिये।।

□□

राम नवमी (१९ अप्रैल २०१३ ई०)
नौ लाख सततत्तर हजार एक सौ तेरहवाँ जन्म दिन

(डी. जी.सी. गुप्त, बुलन्दशहर)

रामचन्द्र जी को सनातनधर्मी भगवान का सातवां अवतार मानते हैं। आर्य समाजी इन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में मानते हैं और इनके गुणों- विशेषताओं को अपनाने पर बल देते हैं।

आपका जन्म त्रेता युग के संक्रमण काल में चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को दोपहर १२ बजे अयोध्या में हुआ था, वहाँ भव्य मन्दिर बनाया गया था जिसे मुगल बादशाह ने तुड़वा कर मस्जिद का रूप दे दिया था। १५२८ से १९४७ तक हिन्दुओं ने इस स्थान को प्राप्त करने के लिए ७६ बार संघर्ष किया किन्तु असफल रहे।

१९४७ में पत्रकारों ने गाँधी जी से राम जन्म भूमि पर बने हुए ढाँचे के बारे में प्रश्न पूछा था। उत्तर में गाँधी जी ने कहा था कि "पहले हिन्दू समाज सिद्ध करे कि अयोध्या में रामजन्म भूमि स्थल पर मन्दिर था।" गाँधी जी का उत्तर पूर्ण रूप से निराशावादी था किन्तु हिन्दू ने गाँधीजी का साथ नहीं छोड़ा। अब विवाद सर्वोच्च न्यायालय में है। हिन्दू समाज की विचित्र सोच देखकर आश्चर्य होता है।

□□

आर्यो! महर्षि दयानन्द का जाना और आना

(पं० नन्दलाल निर्भय सिद्धांताचार्य पत्रकार)

महर्षि दयानन्द सरस्वती के आने से पहले इस देवभूमि आर्यावर्त्त (भारत) में चहुँओर घोर अंधकार छाया हुआ था। उस समय वेदरूपी सूर्य अस्त हो चुका था। सर्वत्र पुराणों, कुरान , बाइबिल का प्रचार-प्रसार हो रहा था। धर्म के नाम पर अधर्म, अत्याचार अन्याय पनप रहा था। यज्ञों में नरबलि, पशुबलि, पक्षीबलि दी जाती थी। ईश्वरपूजा की जगह पाषाण पूजा होती थी। अनमेल व बालविवाह होते थे। कन्याओं को पैदा होते ही मार दिया जाता था। नारियों को पैरों की जूतियाँ माना जाता था। गऊहत्या जारी थी। स्त्रियों और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। प्रतिदिन हजारों हिन्दू ईसाई-मुसलमान बनते थे। छुआ-छात, जातिपाति का जोर था। राजा लोग, आपस में लड़ते रहते थे इसलिए विदेशी-विधर्मी धूर्त व्यक्ति हमारी फूट का लाभ उठाकर यहाँ के शासक बन गए थे। अंग्रेज भारी अत्याचार करते थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जब इस ऋषियों की भूमि भारत की यह दुर्दशा देखी, तो उनका हृदय दुःखी हो गया। उन्होंने दण्डी स्वामी बिरजानन्द सरस्वती से मथुरा जाकर वेद पढ़े और उनकी आज्ञानुसार भारत भर में वेदों का प्रचार किया। स्वामी दयांनन्द महाराज ने नरबलि पशुबलि को वेद विरुद्ध बताया। कर्म प्रधानता का प्रचार करके जन्मजाति-छुआ छात का खंडन किया। नारी जाति को, गऊ को पूज्य बताया। पंचयज्ञ प्रत्येक गृहस्थ को करने आवश्यक बताए। एक ईश्वर, एक अभिवान नमस्ते। एक धर्म वैदिक धर्म सबको मानने की शिक्षा दी। स्वदेशी राज्य को सर्वोपरि एवम् सुखकारी बताया। देश के राजाओं को इकट्ठा करके संगठित रहने का पाठ पढ़ाया। बालविवाह, अनमेलविवाह अहितकारी बताए। स्त्री, शूद्रों को वेद-विद्या पढ़ने का अधिकार दिलाया। वे पूरे जीवन अन्याय-अत्याचार का प्रबल विरोध करते रहे। उनका लक्ष्य इस देश को प्राचीन गौरव दिलाकर संसार का स्वामी बनाना था। सच तो यह है

"स्वामी दयानन्द योगी ने, भारी कष्ट उठाए थे।
विध्न और बाधाओं के वे, कभी नहीं घबराए थे।।
ईंटें खाईं, पत्थर खाए, सत्तरह बार विषपान किया।
जो कुछ सोचा, वहीं कहा, जो कहा वह करके दिखा दिया।।
कष्ट सहे जीवन भर ऋषि ने, हँसते रहे सदा स्वामी।
हुआ नहीं इस जग में अब तक, ऋषि सा संन्यासी नामी।।
देव पुरुष के उपकारों को, भारत वासी भूल गए।
अज्ञानी प्रमादी बनकर, झूठे मद में फूल गए।।"

प्रिय आर्यजनो! थोड़ा विचार करके अपनी अंतर्रात्मा से पूछो। क्या हम स्वामी जी की शिक्षाओं को मान रहे हैं? क्या हम स्वयम् को जन्म जाति के रोग से बचा पाए हैं? क्या हम वेदों का पठन-पाठन नियमित करते हैं? क्या हम पंच यज्ञों का पालन करते हैं? यदि नहीं तो हम ऋषि ऋण से उऋण कैसे होंगे?

प्यारे साथियों! रोजाना समाचारपत्रों में हिंदुओं के धर्म परिवर्तन, गऊहत्या, कन्या भ्रूण-हत्या, अपहरण, बलात्कार, गरीब-कमजोरों के साथ अत्याचार होने के समाचार पढ़ने को मिलते हैं। महर्षि दयानन्द महाराज ने राजार्य सभा, धर्मार्थ सभा, विद्यार्य सभा बनाने की बात अपने महान ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" में लिखी थीं। बताओ क्या हम तीन सभाएं बनाकर महर्षि की आज्ञा का पालन कर रहे हैं? इस तरह कैसे काम चलेगा!

आर्यो! आर्य समाजों में बारात घर बना रहे हो।

स्कूल खोल रहे हो। स्कूलों में सहशिक्षा का प्रचलन कर रहे हो, क्या यही महर्षि का मंतव्य था? आर्य समाजों में सन्यासी, उपदेशकों, भजनों, उपदेशकों को भी नहीं ठहरने दिया जाता जबकि बारात घरों में बाराती, शराबी हुड़दंग करते हैं तथा स्कूलों में अध्यापक अनार्यत्व का प्रदर्शन करते हैं। इससे बड़ी गिरावट और क्या होगी?

आज से तीस वर्ष पहले ग्राम कसबों में आर्य समाज के उपदेशक-भजनोपदेशक वेद प्रचार करने जाते थे तथा हजारों की उपस्थिति श्रोताओं की होती थी लेकिन अब कहीं भी आर्य समाज के प्रचारक नजर नहीं आते जबकि अन्य मतावलम्बी भारी संख्या में घूम रहे हैं। अगर यही हाल रहा तो ....।

हमें सिक्खों की तरह पांच स (१) संध्या (२) स्वाध्याय (३) सत्संग (४) सेवा (५) सुदान अपनाने होंगे। अगर हमने जगतगुरु देव दयानन्द महाराज को ठीक तरह से जान लिया तथा उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतार लिया तो अवश्य ही हम सबका कल्याण हो जाएगा तथा विश्व को आर्य बनाने का लक्ष्य भी पूरा हो जाएगा। परमात्मा हम आर्यों को सुमति प्रदान करें। अतः आर्यो! अब जाग जाओ।

"जगत गुरु ऋषि दयानन्द के वीर सैनिकों जागो तुम।

करो परस्पर मेल, फूट पापिन को वीरो! त्यागो तुम।।

वेद विरोधी पौंगापंथी, जग में बढ़ते जाते हैं।
करते दुष्प्रचार रात-दिन, तनिक नहीं शर्माते हैं।।
अग्रवाद-आतंकवाद का, बोल यहाँ अब बाला है।
झूठे लोगों की चाँदी हैं, सच के मुख पर ताला है।।
करो वेद प्रचार जगत में, वैदिक धर्म निभाओ तुम।
लेख राम, श्रद्धानन्द बन कर, जग में धूम मचाओ तुम।।"

❑❑

आर्य समाज स्थापना दिवस की १३८वीं वर्षगांठ (११ अप्रैल)

(इन्द्र देव, म्यंमार वाले, सिद्धांत भूषण, बुलन्दशहर)

बुलन्दरशहर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में, दिल्ली से ७७ किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ जिला मुख्यालय है। जिले में ६ तहसीले हैं। कई नगर-कस्बे तथा हजारों गाँव हैं।

सभी प्रमुख नगरों- कस्बों तथा कुछ गाँवों में आर्य समाजों के भवन हैं, जिनकी कुल संख्या ५०-१०० के बीच है।

नगर में, चौक बाजार में, आर्य समाज का विशाल भवन है। इसकी स्थापना १२६ वर्ष पूर्व हुई थी। इसी भवन में आर्य कन्या इन्टर कॉलेज की कक्षाएँ चलती हैं।

१२६ वर्षों में नगर की जनसंख्या लगभग ६ गुना हो गई है। कई मौहल्ले बने। अब नगर के चारों ओर अनेकों कॉलोनियां बनी हैं और बन रही हैं। रविवार को आर्य समाज में साप्ताहिक यज्ञ व सत्संग पुरुषों का प्रातः तथा महिलाओं का दोपहर को होता है। पर्व/जयन्तियाँ भी मनाई जाती हैं।

जिस प्रकार जनसंख्या ६ गुना हुई, उसी प्रकार आर्य समाजें भी ५-६ हो जानी चाहिए थीं, तभी तो वेदों का प्रचार-प्रसार होता और आर्य समाज का कार्य बढ़ता और उसका विस्तार होता। खेद है कि नगर में दूसरी आर्य समाज तो बनी किन्तु ४७ वर्ष हो गए लेकिन भवन नहीं बना। आर्य समाज की प्रगति तब हो सकती है, जब वह प्रतिदिन प्रातः व सायं ४-४ घण्टे खुले जहाँ हवन सत्संग हो।

❑❑

प्राणायाम : एक विज्ञान

(धर्मप्रकाश विद्यालंकार, सूरौता, जिला-भरतपुर, मो. 09971171797)

हमारी प्राचीन वैदिक संस्कृति के एक अंग योगाभ्यास की आज विश्व में धूम मची हुई है। विश्व के सभी बुद्धिजीवी इसे अपने जीवन में स्वीकार करने के लिये लालायित हो रहे हैं। हों भी क्यों नहीं, इसके प्रत्यक्ष में लाभ दिख रहे हैं। भोगवाद के व्यामोह में फँसी मानवता अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र रोगों का घर बनती जा रही है। विज्ञान के नाम पर भौतिक सुख देने वाली सुविधाएँ आज हमारे लिये दुःख-दुविधा बनकर रह गई है। हमने अपने जीवन से आध्यात्म पक्ष को बड़ी निर्ममता से काट कर फैंक दिया है। केवल भोगवाद की अन्धी दौड़ में बेतहासा दौड़ती जा रही मानवता अपनी गति और मति का सन्तुलन विल्कुल खो चुकी है। ऐसे में योगाभ्यास हमारे लिये दैवीय वरदान बनकर हमारी जीवन ज्योति को भोगवाद की प्रचण्ड आँधी से बचाये रख सकता है। स्वामी रामदेव जी ने बड़ी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए वैदिक ऋषियों की योग परम्परा को पुनर्जीवित किया है। लेकिन यह भी सच है कि स्वामी रामदेव जी जो बता रहे हैं योग उतना ही नहीं है। योग तो बहुत ऊँची चीज है, बहुत व्यापक है योग- एक प्रकार से हम कहें तो योग अपने आप में सम्पूर्ण जीवन पद्धति है- अर्थात् योग में वे सब सम्भावनाएँ भोगवादी जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक सुलभ हैं, जो हम आज विज्ञान से प्राप्त कर रहे हैं। अन्तर इतना है कि योगी तप-अर्जित सुखों का सच्चा आनन्द लेता है और भोगवादी शरीर को श्रम के लिए तैयार नहीं करना चाहता।

स्वामी रामदेव जी योग का बाह्य स्वरूप लेकर चल रहे हैं, क्योंकि भोगवाद में जकड़ी मानवी-बुद्धि योग के गूढ़तत्वों को नहीं समझ सकती है। हाँ, आसन-प्राणायाम जेसे बहिरंग योग के प्रभूत व प्रत्यक्ष लाभ पाकर वह योग की महत्ता को जानने-समझने में रुचि लेने लगेगी। आसन प्राणायामों का प्रत्यक्ष लाभ आज लाखों-करोड़ों व्यक्ति ले ही रहे हैं। चाहे कोई स्वस्थ हो अथवा रोगी, रोगी भी चाहे किसी प्रकार की शारीरिक व मानसिक व्याधि से पीड़ित हो, नियमित रूप से आसन व प्राणायाम विशेष के साथ खान-पान पर थोड़ा सा ध्यान देकर पीड़ामुक्त हो सकता है। किसी आयु वर्ग का, अथवा आर्थिक स्तर का स्त्री-पुरुष हो मन लगाकर उचित रीति से योगासन व प्राणायाम करके पूर्ण लाभ ले सकता है। ये आसन-प्राणायाम अपने आपमें पूर्णतः विज्ञान-सम्मत हैं। शारीरिक स्तर पर आसनों का महत्व तो सामान्यतः समझा जा सकता है, लेकिन प्राणायाम जैसी सामान्य सी क्रिया के द्वारा शरीर की सब व्याधियों को समाप्त किया जा सकता है, यह समझना जनसामान्य के लिए कठिन लगता है।

हमारे ऋषि-मुनियों का ज्ञान-विज्ञान आधुनकि युग के महानतम् वैज्ञानिकों से कहीं अधिक श्रेष्ठ, सम्पूर्ण व उच्च स्तर का था। वे केवल भौतिकवादी नहीं थे, अपितु आध्यात्मनिष्ठ वैज्ञानिक थे। पदार्थ-विद्या (विज्ञान) उनकी दृष्टि में अविद्या मानी जाती थी। उनकी मान्यता थी- 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या तो वह है, जो हमें जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त कर दे। इसलिये वे हर वस्तु को आध्यात्म दृष्टि से देखते थे। यह शरीर जो आज हमने भोगायतन बना रखा है, खाने-पीने, मौज उड़ाने का साधन मान रखा है, ऋषियों की दृष्टि में यह प्रभु प्राप्ति का दुर्लभ साधन था। योग के पथ पर चलने वाले, स्वामी रामदेव के योग-अभियान से जुड़ने वाले अथवा लाभ उठाने वाले सज्जन इस बात का विचार अवश्य करें कि यह जगत, हमारा जन्म या जीवन केवल खाने-पीने मौज-मस्ती के लिये नहीं है। जीवन व जगत की सम्पूर्ण गुत्थियों के रहस्योद्घाटन में लगा हुआ वैज्ञानिक वर्ग संसार के सम्वन्ध में क्या, कैसे और कब? जैसे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास तो करता है, लेकिन आज तक कोई विज्ञानवादी ऐसा नहीं हुआ, जो विज्ञान से तथ्य और तर्क लेकर 'क्यों' का उत्तर दे सके। सारे वैज्ञानिक एक स्वर से स्वीकारते हैं कि हमारे पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं कि यह संसार क्यों बना?

किसी ने बिल्कुल सच कहा है कि जहाँ पश्चिम की फिलॉसफी दम तोड़ देती है, वहाँ से पूरब अर्थात् भारत का दर्शन शुरू होता है। विज्ञान जहाँ मूक हो जाता है,

भारत का दर्शन हजारों वर्ष पूर्व वहाँ से अपनी बात शुरू करता है। जिस योग की हम चर्चा कर रहे थे, उसके प्रणेता महर्षि पतंजलि योगदर्शन में लिखते हैं- 'भोगापवर्गार्थ दृश्यम्' दृश्य-संसार ईश्वर ने हम जीवों के भोग और अपवर्ग के लिए बनाया है। इससे यह सिद्ध है कि हमारे ऋषियों का ज्ञान आज के विज्ञान से कहीं बढ़कर था। उसी योगदर्शन में प्राणायाम के लाभों को स्पष्ट करते हुए लिखा है- 'प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानराविवेक ख्याते'। अर्थात् प्राणायाम के करने से हमारे शरीर व बुद्धि की अशुद्धियों (विकारों) का क्षय (नाश) होता है तथा ज्ञान ज्योति प्रखर होती है।

इसमें सन्देह करने के लिए कोई अवकाश नहीं कि प्राणायाम से हमारी शारीरिक व मानसिक व्याधियाँ दूर होती हैं। चूँकि हमारे रक्त संचार (ब्लड सर्कलेशन) का मूल आधार हमारी प्राणशक्ति है। ज्योंही हमारी प्राण शक्ति निर्बल होती जाती है, त्यों ही हमारा रक्तसंचार मन्द पड़ता जाता है।

जब हमारे सब अंग-प्रत्यंगों को रक्त की पर्याप्त आपूर्ति नहीं होती, तो उनमें दुर्बलता व अनेक विकास उत्पन्न होने लगते हैं। रोगी शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क व श्रेष्ठ विचार सम्भव ही नहीं। प्राणायाम शब्द का अर्थ ही प्राणों का विस्तार है। प्राणायाम के द्वारा हम अपनी प्राणशक्ति का विस्तार करते हैं, उसे अपने अंग-प्रत्यंगों तक फैलाते हैं। घर बैठे, किसी पार्क अथवा योग कक्षा में जाकर यदि हम अपनी प्राण शक्ति का सम्यक् विसतार कर सकते हैं, तो इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है? तो आओ, योग अपनाओ- उत्तम स्वास्थ्य व सुखद जीवन पाओ।। ❑❑

महर्षि दयानन्द की १८९वीं जयन्ती (७ मार्च २०१३ ई.)

(इन्द्र देव १८/१८६, टीचर्स कालोनी, बुलंदशहर मो. ८६५८७७८४४३)

"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।"- महर्षि दयानन्द सरस्वती।

(साभार मासिक वैदिक संसार इन्दौर)

आर्य समाज के संस्थापक और सत्यार्थ प्रकाश के लेखक महर्षि दयानन्द का कहना व लिखना सिद्धान्त रूप से तो अति उत्तम- प्रशंसनीय- सराहनीय है किन्तु व्यवहारिक जीवन इसके अनुकूल नहीं है। अब दयानन्द जी, आर्यावर्त की दशा को जानिए जो इस प्रकार है-

आप की आयु ५९ वर्ष ८ महीना ६ दिन रही। आपने सत्यार्थ प्रकाश में राजार्य सभा बनाने हेतु लिखा था किन्तु आर्यों ने स्वतन्त्रता संघर्ष में काम करने के लिए राजार्य सभा नहीं बनाई बल्कि अधिकांश आर्य कांग्रेस में चले गए। १९२० से कांग्रेस मुस्लिम तुष्टीकरण के कार्य करती रही, जिसमें आर्य भी सहयोग देते रहे। १९४७ में देश का क्षेत्रफल १३.२५ लाख वर्गमील था। १४ अगस्त को देश विभाजित हुआ। खंडित भारत का क्षेत्रफल १० लाख वर्गमील रहा। आर्य समाज का गढ़ लाहौर जहाँ आपने स्वयं देश की दूसरी आर्य समाज स्थापित की थी वह भारत में नहीं रही। लाखों लोग मरे। करोड़ों शरणार्थी बने। अरबों रुपयों की सम्पत्ति नष्ट हुई किन्तु अदूरदर्शी स्वार्थी-कमजोर नेताओं के कारण ६५ वर्षों के बाद स्वतंत्र भारत में भी हमारी वही दशा है, जो १९४७ में परतन्त्र भारत में थी।

देश में भ्रष्टाचार- रिश्वतखोरी- बेईमान- अपहरण- चोरी- डकैती- गोहत्या- पशुहत्या- मिलावट- नकली माल- बलात्कार- सामूहिक बलात्कार- यौन उत्पीड़न- दहेज हत्या- अन्धविश्वास- पाखण्ड- मूर्ति पूजा- शराब व माँस का सेवन- तस्करी- तम्बाकू का सेवन- अन्य अपराध कई गुना ज्यादा हो रहे हैं। देश में शराब की नदियाँ बह रही हैं। एक प्रकार से रावण राज्य आ गया है।

देश का कानून कमजोर है। सजा हल्की तथा बहुत देर से मिलती है। नाबालिक लड़कियों से बलात्कार हो रहे हैं। महिलाएँ असुरक्षित महसूस करती हैं उनका बाहर निकलना दूभर हो रहा है। बहुत घटिया शर्मनाक दशा देश की हो गई है।

आप आर्यों को प्रेरणा दें कि वे राजार्य सभा के नाम से राजनीतिक कार्य करें, ताकि आपके स्वपनों का आर्यावर्त वास्तव में बन सके। ❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७ अप्रैल २०१३
Post in Delhi R.M.S
०१-०७/४/२०१३

अप्रैल 2013

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2012-14
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण दो माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.	प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.........................
ग्राम.........................
डा०.........................
जिला.........................

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, 'मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिण्टर्स, १५३४, गली कासिमजान, बल्लीमारान, दिल्ली-६